1. ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। यजुर्वेद ३.३५ 4
2. ओ३म् नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च। यजुर्वेद १६.४१ 7
3. ओ३म् सदसि सी दैता। यजुर्वेद तैतरीय १.१.११.२ 8
4. ओ३म् नमस्ताराय नम शम्भवे च। यजुर्वेद तैतरीय ४.५.८.१ 8
5. संहिता पाठ 8
6. वेद गानम् वर्तमान साहित्य में उपलब्धता 9
7. प्रातिशाख्य 10
   - प्रातिशाख्यों का विषयः 10
   - उपलब्ध प्रातिशाख्यः 10
   - तैत्तिरीय प्रातिशाख्य 10
   - शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य 10
   - कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रतिशाख्य 11
   - तैत्तिरीय प्रातिशाख्य 11
   - अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका 11
8. शुद्ध वेदपाठ के कुछ नियम 11
9. पद पाठ 12
10. पद पाठ के नियम 13
    - सन्धिविच्छेद 13
    - अवग्रह का प्रयोग 13
    - इतिकरण 13
    - इतिकरण के साथ पद का पुनरावर्तन 14
    - स्वर परिवर्तन 14
    - स्वर परिवर्तन के सामान्य नियम 14
11. पद पाठ के नियम पण्डित युधिष्ठर मीमांसक रचित वैदिक स्वर मीमांसा अंश 15
    - वेदमन्त्र के संहिता पाठ को पदपाठ 15
    - पद पाठ में व्यवहार्य संज्ञाएँ 16
    - प्रगृह्य संज्ञा-निम्न पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है। 16
12. संहितापाठ से पदपाठ 16
    - पद सम्बन्धी सामान्य नियम इस प्रकार है। 16
    - पदस्वर सम्बन्धी नियम संहितापाठ मे वर्तमान स्वरों को पदपाठ में इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए। 17
    - प्रगृह्य सम्बन्धी नियम प्रगृह्य संज्ञक पदों को पदपाठ में निम्न नियमों के अनुसार दिखाना चाहिए। 17
    - रिफित सम्बन्धी नियम 17
    - अवग्रह सम्बन्धी नियम 17
    - उपसंहार 19
13. वैदिक वर्ण और स्वर 19
    - वैदिक वर्ण और स्वर 19
    - स्वर 19
    - उदात्त 19
    - अनुदात्त 20

स्वरित 20
प्रचय....................21
14. वैदिक स्वर प्रक्रिया 22
संज्ञा शब्दों में उदात्त....................22
समासिक पदों में उदात्त 22
वाक्य में उदात्त 23
उपसर्गों में उदात्त 23
पद में दो उदात्त 23
सर्वानुदात्त या उदात्त रहित पद....................23
उदात्त....................23
गात्रवीणा-हाथ की क्रिया....................23
नारदीय शिक्षा में स्वर 24
15. सप्तदिवसीय स्वर संधान सत्र-15 08 2023....................24
16. सामवेद एक परिचय-०१ 25
सामवेद में मन्त्रों की संख्या....................25
सामवेद की कौथुमीय शाखा उत्तरार्चिक 26
सामवेद का वाङ्मय 26
सामगान के प्रकार (स्थान की दृष्टि से) 26
सामवेद के अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु। 26
सामवेद का प्रथम मन्त्र निम्न है।....................26
सामवेद स्वर परिचय....................26
ऋक्-साम के सम्बन्ध की मीमांसा 27
सामवेद में छन्द 27
सामविकार....................28
क्रम से सामविकारों को समझते हैं।....................28
सामवेद में सामगान के मन्त्रो के भाग....................28
सामवेद सामगान में मन्त्र के भाग 28
सामगान....................29
सामगान की स्वरलिपि....................29
17. वैदिक वाङ्मय सामवेद एक परिचय-०२ 29
18. अथर्ववेद एक सामान्य परिचय 32
19. यजुर्वेद एक संक्षिप्त परिचय 32
मुख्य वेद-यजुर्वेद 33
अग्निचयन 33
राष्ट्रोत्थान हेतु प्रार्थना....................33
अर्थ....................33
संप्रदाय 33
शाखाएँ 33
शुक्लयजुर्वेदः 34

शुक्लयजुर्वेद की विषय वस्तु....34
कृष्णयजुर्वेद....35
तैत्तिरीय-संहिता....35
इसके काण्डों के अनुसार वर्ण्य-विषयः....35
मैत्रायणी संहिता....35
काठक संहिता....35
कपिष्ठल (कठ) संहिता....36
अश्वमेधादि याग....36
20. यजुर्वेद का सामान्य परिचय....36
21. वैदिक वाङ्मय ऋग्वेद एक परिचय....37
ऋग्वेद की शाखा....37
ऋग्वेद के ब्राह्मण....37
22. सामवेद ऋग्वेद....40
23. ऋग्वेद खिल सूक्त....40
खिला का अर्थ (खिल)....40
प्रसिद्ध खिला सूक्त....40
अन्य नाम....41
24. शिक्षा....42
25. शिक्षा ग्रन्थ में इन छः अंगों का विवेचन किया जाता है।....42
26. शिक्षा में तीन प्रकार की रचनाएँ।....42
27. सम्प्रति उपलब्ध प्रातिशाख्य-ग्रन्थः-....42
28. शिक्षा-ग्रन्थ....42
शिक्षा-ग्रन्थों के विषय....42
29. वेदमन्त्र का भाष्य महर्षि दयानन्द....43

1. ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । यजुर्वेद ३.३५

देवता सविता, छन्द गायत्री (अत: इसे निचृद् गायत्री कहते हैं।), स्वर षड्ज,

यजुर्वेद संहिता ३६ । ३, सामवेद १४६२, ऋग्वेद, ३ । ६२ । १०, यजुर्वेद संहिता ३ । ३५, २२ । ९, ३० । २, काण्व यजुर्वेद संहिता ३ । ४३, २४ । १३, ३४ । २, ३६ । ३ तैतरीय संहिता १ । ५ । ६ । १२, ४ । १ । ११ । ७ मैत्रायणी संहिता ४ । १० । ७७ ॥

ब्राह्मण मन्त्रों में गायत्री मन्त्रों का उल्लेख अनेक स्थानो में है।

ऐतरेय ब्राह्मण ४ । ३२ । २, ५ । ५ । ६, १३ । ८, १९ । ८, कौशीतकी ब्राह्मण २२ । ३, २६ । १०, गोपथ ब्राह्मण १ । १ । ३२, १ । १ । ३४, दैवत ब्राह्मण ३ । २५, शतपथ ब्राह्मण २ । ३ । ४ । ३९, २३ । ६ । २ । ९, १४ । ९ । ३ । ११, तैतरीय सं० १ । ५ । ६ । ४, ४ । १ । १, मैत्रायणी सं० ४ । १० । ३, १४९ । १४ ॥

आरण्यकों में गायत्री का उल्लेख इन स्थानों पर है। तैत्तरीय आरण्यक १ । १ । २१० । २७ । १, बृहदारण्यक ६ । ३ । ११ । ४ । ८ ॥

उपिनषदों में इस महामन्त्र की चर्चा निम्न प्रकरणों में है

नारायण उपिनषद् १५, २, मैत्रेय उपिनषद् ६ । ७ । ३४, जैमिनी उपिनषद् ४ । २८ । १, श्वेताश्वेतर उपिनषद् ४ । १८ ॥

सूत्र ग्रंथों में गायत्री का विवेचन निम्न प्रसंगों में आया है।

आश्वालायन श्रौत सूत्र ७ । ६ । ६, ८ । १ । १८, शांखायन श्रौत सूत्र २ । १० । २, १२ । ७, ५ । ५ । २, १० । ६ । १०, ९ । १६, आपस्तम्भ श्रौत सूत्र ६ । १८ । १, शांखायन गृह्य सूत्र २ । ५ । १२, ७ । १९, ६ । ४ । ८, कौशीतकी सूत्र ९१ । ६, खगटा गृह्य सूत्र २ । ४ । २१, आपस्तम्भ गृह्य सूत्र २ । ४ । २१, बोधायन ध० शा० २ । १० । १७ । १४, मान०ध०शा० २ । ७७, ऋग्विवधान १ । १२ । ५, मान० गृ० सू० १ । २ । ३, ४ । ४ । ८, ५ । २ ॥

भाष्य रामनाथ वेदालंकर सामवेद

ऋचा में तीन पाद है। प्रत्येक वेद से एक एक पाद दुहा गया है (मनु २ । ७७) मनु के इस वचन के आधार पर प्रत्येक पाद का पृथक अर्थ देखते हैं। (सवितु) सकल जगत की उत्पति करनेवाला, सब शुभ गुणों के प्रेरक परमात्मा का (तत्) वह प्रसिद्ध तेज (वरेण्यम्) है। २(देवस्य) दाता, प्रकाशमान और प्रकाशक उस परमात्मा के (भर्गः) तेज को, हम (धीमहि) धारण करें वा ध्यावें। ३ (यः) जो सविता प्रभु (नः) हमारे (धियः) प्रज्ञाओं और कर्मों को (प्रचोदयात) सन्मार्ग प्रेरित करे ॥

भावार्थः सकल जगत के स्रष्टा, सूर्य के समान सबके अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाले, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के तेजों के ध्यान और धारण करने से वह उपासक की बुद्धियों और क्रियाओं को सन्मार्ग में प्रेरित करके उसे सुखी करता है।

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य सामवेद

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं, उन सविता देव के वरण करने योग्य तेज को हम धारण करते हैं।

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद ३.३५

सम्पूर्ण जगत् के जन्मदाता सविता (सूर्य) देवता की उत्कृष्ट ज्योति का हम ध्यान करते हैं, जो (तेज सभी सत्कर्मों को सम्पादित करने के लिए) हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद २२.९

सर्वप्रेरक, पापनाशक, वरण करने योग्य, देव (सत् चित् आनन्द) स्वरूप, सविता देव को हम धारण करते हैं वे (उत्पादक प्रेरक देव) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने (श्रेष्ठ कर्म करने) की प्रेरणा प्रदान करें ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद ३०.२

हम उन प्रेरक सविता के तेज को धारण करते हैं जो हमारी बुद्धि (कर्म) को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद ३६.३

उस प्राण स्वरूप, दु:ख नाशक, सुख स्वरूप, प्रकाशवान, श्रेष्ठ, तेजस्वी, देवत्व प्रदान करने वाले परमात्मा का हम ध्यान करते हैं, जो (वह) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य ऋग्वेद ३.६२.१०

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं उन सविता देवता के वरण करने योग्य, विकारनाशक, दिव्यता प्रदान करने वाले तेज को हम धारण करते हैं ॥

भाष्य पण्डित राम गोविन्द त्रिवेदी ऋग्वेद ३.०६२.१०

जो सविता हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियों में प्रसिद्ध उस द्योतमन जगत् सृष्टा परमेश्वर के संभजनीय परब्रह्मात्मक तेज का हम लोग ध्यान करते हैं।

भाष्य महर्षि दयानन्द ऋग्वेद ३.६२.१०

हे मनुष्यो! सब हम लोग (यः) जो (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) उत्तम गुणकर्म और स्वभावों में प्रेरित करे उस (सवितुः) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त स्वामी और (देवस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता प्रकाशमान सबके प्रकाश करनेवाले सर्वत्र व्यापक अन्तर्यामी के (तत्) उस (वरेण्यम्) सबसे उत्तम प्राप्त होने योग्य (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाले प्रभाव को (धीमहि) धारण करें ॥

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद ३.३५

हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला

तेजःस्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है, वह अपनी करूणा करके (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात) प्रेरणा करे ॥

भावार्थ मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करे। किस प्रयोजन के लिये, जिससे वह धारण व प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे खोटे गुण कर्मों से अलग करके अच्छे अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे, इसलिए प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी, वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिये ॥

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद २२। ९

हे मनुष्यों! (सवितुः) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे (देवस्य) आप से आप ही प्रकाशस्वरूप सबके चाहने योग्य समस्त सुखों के देने हारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करने वाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं, (तत्) उसको तुम लोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात उनको अच्छे अच्छे कामों में लगावे, वह अन्तर्यामी परमात्मा सबके उपासना करने योग्य है।

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद ३०। २

हे मनुष्यों! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे, उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देनेहारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिस से दुःखों का नाश हो, उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद ३६ ।३

हे मनुष्यों! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासना काण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञान काण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़ के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे, उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का (धीमहि) ध्यान करें, वैसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो ॥

भाष्य जयदेव शर्मा सामवेद

(वरेण्य) सर्वोत्कृष्ट, वरण करने योग्य अनुपम, (भर्गः) अविद्या, अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अज्ञान से पैदा होने हारे तामस अंकुरों को अग्नि और सूर्य के प्रखर तेज के समान भस्म कर डालने हारे तेज का हम (धीमहि) ध्यान करें, धारण करे। (यः) जो परमेश्वर (न) हमारी (धियः) बुद्धियों और कर्म वृत्तियों को (प्रचोदयात्) उत्तम सन्मार्ग को प्रेरित करता है।

श्लोक

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति ॥ गो पथ ब्राह्मण १.१.३२ ॥

उस उत्पादक परमात्मा देव का परम वरणीय भर्गरूप तेज वेद छन्द है जिसको कवि विद्वान लोग अन्न कहते हैं। और धिय का तात्पर्य कर्म है, हे शिष्य यही मैं तुझको उपदेश करता हूं कि उन कर्मों द्वारा ही परमात्मा सबको प्रेरित करता है।

भाष्य जयदेव शर्मा ऋग्वेद

(यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरण करता है (सवितुः) सर्वोत्पादक उस (देवस्य) प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वदाता, परमेश्वर के (तत्) उस अनुपम (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ (भर्गः) पापों को भून डालने वाले, समस्त कर्म बन्धनों को भस्म करने वाले तेज को (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें। जो (नः) हमारे (धियः) समस्त कर्मों को सञ्चालित करता उस सर्वप्रेरक देव, दानशील सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उस सर्व शत्रुतापक तेज और प्रजा भृत्यादि पालक (भर्गः) अन्न को (धीमहि) धारण करें।

भाष्य जयदेव शर्मा यजुर्वेद ३। ३५

राजा के पक्ष में

(सवितुः) समस्त देवों के प्रसविता उत्पादक और उत्कृष्ट शासक, आज्ञापक, प्रेरक, (देवस्य) विजेता महाराज के (तत्) उस (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पाप के भूने डालने वाले तेज को हम सदा (धीमहि) धारण करें, सदा अपने ध्यान में रक्खें। (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को समस्त कार्य व्यवहारों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग पर संचालित करता है।

ईश्वर के पक्ष में

समस्त जगत् के उत्पादक और संचालक उस देव परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ, पाप नाशक तेज को हम धारण करें। (यः नः प्रचोदयात्) जो हमे सन्मार्ग में हमे सदा प्रेरित करे।

भाष्य जयदेव शर्मा यजुर्वेद ३०। २

(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सब के प्रकाशक प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाले, एवं सबों को वरण करने योग्य, सर्वोत्तम (भर्गः) पापों को भून डालने वाले तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हमारे (धियः) बुद्धियों, कर्मों और स्तुति वाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग में प्रेरित करें ॥

शृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने जाते हैं, प्रत्येक संसार का प्राणी मात्र, उसी परमिपता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार करता रहा है और करता रहता है क्योंकि उसका वरण करने के पश्चात् मानव को द्वितीय वरण की आवश्यकता नही होती। क्योंकि वह अखण्ड है, गति देने वाला है, इस संसार का वह संचालन कर रहा है, तो वह जो मेरा देव जो संचालन करने वाला है, आज हम उस अपने महामना प्रभु की प्रतिभा का वर्णन करते चले जाएं। मेरे प्यारे प्रभु ने यह संसार मानो एक रचनामयी दृष्टिपात आता रहता है

और उसी के कारण ये भिन्न भिन्न रूपों में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। आज मैं तुम्हे उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं, जिस क्षेत्र में ऋषि मुनि बेटा! अपना अध्ययन करते रहे हैं, और उनका जो अध्ययन की जो शैली है वह बड़ी विचित्र रही है, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके, प्रत्येक वस्तु के ऊपर उनका चिन्तन होता रहा और चिन्तन मानो बाह्य जगत में, आन्तरिक जगत में, दोनों जगतों में बेटा! उनकी आभा निहित रही है और उनका क्रियाकलाप महामना देव की आभा में उसके नियन्त्रण में कार्य होता रहा, उनके विचारों में किसी भी प्रकार की विकृतता नही होती, उनके विचारों में एक स्थिरता रहती है और वही स्थिरता मानो समाज को, मानव को ऊँचा बना देती है।

मानव के जीवन में परमपिता परमामा वरण करने योग्य है, जो मानव उसका वरण कर लेता है, वह मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है। आओ! आज हम परमपिता परमामा का और अपने मध्य में जो नाना सन्धियां हैं उन सन्धियों को हम एक सूत्र में लाना चाहते हैं परन्तु वह नाना सन्धियां क्या हैं? वह जो नाना प्रकार की जो प्रकृति की अमूल्य तरंगें हैं अथवा मूल में मन में विराजमान रहती हैं, उन मूल तरंगों को हम अपने मध्य से दूरी करते हुए ज्ञान और विवेक के द्वारा व्यापक बनाते हुए और उसको आंकुचन करते हुए अथवा अपने मध्य में वह जो प्रभु का परम, सुखद, आनन्द कहलाया जाता है। उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए हम नाना प्रकार की जो हम सीमाओं में परिणत रहते हैं। उन सीमाओं से हमें उत्तीर्ण होना है, उन्हें अपने से दूर करना है जिससे हमारे जीवन में महत्ता की तरंगें ओत प्रोत हो जाएं। बेटा! हमारे यहाँ ऋषिजन विद्यमान होकर के अपना अपना चिन्तन करते रहते थे। और उनके जो चिन्तन करने का क्रम विचित्र और महान माना जाता है। वे यह कहा करते हैं कि चिन्तन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि परमपिता परमामा वरणीय है। उसको अपने आप वरण करना चाहिए। अपने में धारण कर लेना चाहिए। प्रत्येक मानव संसार में यह उत्सुकता में लगा हुआ रहता है कि मेरे जीवन में आनन्द की तरंगें ओत प्रोत हो जाएँ। तरंगे मानव को कैसे प्राप्त होती हैं? आनन्द उस काल में प्राप्त होता है जब आनन्द स्वरूप को अपने में धारण कर लेते हैं। मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। केवल उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके अपना चिन्तन करते रहे हैं। अपने को वरण करते रहे हैं। वैदिक साहित्य में नाना प्रकार का विचार धारायें मानव के हृदयों में निहित रही हैं। मानव का हृदय उसे आलिंगन करता रहा है और अपने में उसे धारण करने की आकांक्षा बनी रहती है। आओ मुनिवरों! आज मैं तुम्हे दार्शनिकों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं। जहाँ दार्शनिकों ने इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ने का प्रयास किया। वह मेरा देव कितना अनुपम है, वह कितना वरणीय है। उसी मानव को मानवता प्राप्त होती है, जो उसे वर लेता है। उसी को वह प्राप्त होने लगता है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है, उस परमपिता परमामा को हमें वर लेना चाहिए। जो मानव उसे वर लेता है अथवा उसका वरण कर लेता है, वह उसी के समीप आना प्रारम्भ हो जाता है। इसीलिए आचार्यो ने कहा है कि उस परमपिता परमामा को वरण कर लेना चाहिए। जिस प्रकार यज्ञशाला में यज्ञमान अपने पुरोहित को वरण कर लेता है, ब्रह्मा को वरण करता है, जब वह उसे वर लेता है तो उसका याग सम्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार हे मानव! तू अपने आन्तरिक याग को ऊँचा बनाना चाहता है, उसको पूर्ण रुपेण दृष्टिपात करना चाहता है, तो तू अपने प्रभु का वरण कर लें और उसको वरण करके अपने अन्तर्हृदय रूपी गुफा में उसको स्थिर कर ले। जब हृदय रूपी गुफा में उस परमपिता परमामा को तुम दृष्टिपात कर लोगे तो बेटा! उसे अपना स्वामित्व वरणत्व को प्रदान करते हो, तो तुम आत्म याग को पूर्ण कर सकोगे। जैसे मानव बाह्य यज्ञशाला में अग्न्याधान करता है, मानव उसी प्रकार अपने हृदय में, अन्तर्गुफा में ज्ञान रूपी अग्नि को जागरुक कर लेता है। जब वह ज्ञान रुपी अग्नि जागरुक हो जाती है तो यह जो नाना होता इस मानव शरीर में है यह नाना प्रकार के साकल्य के द्वारा यज्ञशाला में हूत करने लगते हैं, देवता प्रसन्न हो जाते हैं। वे पाँचों ज्योतियाँ जागृत हो जाती हैं। इन ज्योतियों को हम जागरूक करना चाहते हैं। वे पांच अग्नि भी कहलाती है। बाह्य जगत् में पाँच प्रकार के यागों का चयन होता रहता है। आन्तरिक जगत में पांच प्रकार की अग्नियों का स्वरुप मानव के समीप आने लगता है। आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा है? आज मैं तुम्हे उसी स्थली पर ले जाने के लिये आया हूँ, जिस स्थली पर विद्यमान हो करके मानव अपनी आत्म चर्चा करता है। वह कण्ठ और हृदय चक्र की चर्चा करता है। वह अपना वरणीय विषय बना लेता है। और उसको अपना वरण करके अपने और प्रभु में अन्तर्द्वन्द्व को दृष्टिपात नही करता। वह अनेकता को एकता के सूत्र में कटिबद्ध करने लगता है और जब अनेकता एकता के सूत्र में कटिबद्ध हो जाती है, तो मानव के हृदय में वह पञ्च अग्नि पञ्च ज्योतियां जागरुक हो जाती है। उन पांचों अग्नियों के प्रकाश में नाना सूर्य आ जाएं परन्तु उसकों आच्छादित नहीं कर सकते।

सहिंता पाठ उदात्त अनुदात्त

ओ३म् भूर्भुव॒ः स्व॑ः । तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्य॒म्भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो न॑ः प्रचो॒दया॑त् ॥

पद पाठ

ओ३म् तत् । स॒वि॒तुः । वरेण्यम् । भर्ग॑ः । दे॒वस्य॑ । धी॒म॒हि॒ । धिय॑ः । यः । न॒ः । प्र॒चो॒द॒या॒दिति॑ प्र चो॒दयात् ॥

व्युत्क्रम पद पाठ

प्र॒चो॒द॒या॒त् । न॒ः । यः । धिय॑ः । धी॒म॒हि॒ । दे॒वस्य॑ । भर्ग॑ः । वरेण्यम् । स॒वि॒तुः । तत् ॥

क्रम पाठ

ओ३म् तत् स॒वि॒तुः । स॒वि॒तुर् वरेण्यं । वरे॒ण्यं भर्ग॑ः । भर्गो॑ दे॒वस्य॑ । दे॒वस्य॑ धीमहि । धी॒म॒ही॒ति॑ धीमहि ॥

धियो॒ यः । यो न॑ः । न॒ः प्र॒चो॒दयात् । प्र॒चो॒द॒या॒दिति॑ प्र चो॒दयात् ॥

जटा पाठ

ओ३म् तत् सवितुस् सवितुस् तत् तत् सवितुः । सवितुर् वरेण्यं वरेण्य सवितुस् सवितुर् वरेण्यम् । वरेण्यं भर्गो भर्गो वरेण्यं वरेण्यं भर्ग॑ः । भर्गो देवस्य देवस्य भर्गो भर्गो देवस्य । देवस्य धीमहि धीमहि देवस्य देवस्य धीमहि । धीमहीति धीमहि ॥

धियो यो यो धियो धियो यः । यो नो नो यो यो न । नः प्रचोदयात् प्रऽचोदयान्नो नः प्रऽचोदयात् । प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात् ॥

शिखा पाठ

ओ३म् तत्सवितुस् सवितुस् तत् तत्सवितुर्वरेण्यम्। सवितुर्वरेण्यम् वरेण्यम् सवितुस् सवितुर्वरेण्यम् भर्गः। वरेण्यम् भर्गो भर्गो वरेण्यम् वरेण्यम् भर्गो देवस्य। भर्गो देवस्य देवस्य भर्गो भर्गो देवस्य धीमहि। देवस्य धीमहि धीमहि देवस्य देवस्य धीमहि। धीमहीति धीमहि॥

धियो यो यो धियो धियो यो यो नः। यो नो नो यो यो नो नः प्रऽचोदयात्। नः प्रऽचोदयात् प्रऽचोदयान्नो प्रऽचोदयात्॥ प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

घन पाठ

ओ३म् तत् सवितुस् सवितुस् तत् तत् सवितुर् वरेण्यं वरेण्य सवितुस् तत् तत् सवितुर् वरेण्यम्। सवितुर् वरेण्यं वरेण्य सवितुस् सवितुर् वरेण्यं भर्गो भर्गो वरेण्य सवितुस् सवितुर् वरेण्यं भर्गः। वरेण्यं भर्गो भर्गो वरेण्यं वरेण्यं भर्गो देवस्य देवस्य भर्गो वरेण्यं वरेण्यं भर्गो देवस्य। भर्गो देवस्य देवस्य भर्गो भर्गो देवस्य धीमहि धीमहि देवस्य भर्गो भर्गो देवस्य धीमहि। देवस्य धीमहि धीमहि देवस्य देवस्य धीमहि। धीमहीति धीमहि॥

धियो यो यो धियो धियो यो नो नो यो धियो धियो यो न। यो नो नो यो यो न प्रचोदयात्प्रचोदयान्नो यो यो न प्रचोदयात्। नः प्रचोदयात् प्रऽचोदयान्नो नः प्रऽचोदयात्। प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

पंच सन्धि घन

ओ३म् तत्सवितुः। सवितुस्सवितुः। सवितुस्तत्। तत्तत्। तत्सवितुः॥ सवितुर्वरेण्यम्। वरेण्यम् वरेण्यम्। वरेण्यम् सवितुः। सवितुस्सवितुः। सवितुर्वरेण्यम्॥ वरेण्यम् भर्गः। भर्गो भर्गः। भर्गो वरेण्यम्। वरेण्यम् वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः॥ भर्गो देवस्य। देवस्य देवस्य। देवस्य भर्गः। भर्गो भर्गः। भर्गो देवस्य॥ देवस्य धीमहि। धीमहि धीमहि। धीमहि देवस्य। देवस्य देवस्य। देवस्य धीमहि॥ धीमहीति धीमहि॥ धियो यः। यो यः। यो धियः। धियो धियः। धियो यः॥ यो नः। नो नः। नो यः। यो यः। यो नः॥ नः प्रऽचोदयात्। प्रऽचोदयात् प्रऽचोदयात्। प्रऽचोदयान्नः। नो नः। नः प्रऽचोदयात्॥ प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

पुष्प माला पाठ

ओ३म् तत्सवितुस् सवितुस् तत् तत्सवितुः। इति सवितुस् तत्। सवितुर्वरेण्यम् वरेण्यम् सवितुस् सवितुर्वरेण्यम्। इति वरेण्यम् सवितुः। वरेण्यम् भर्गो भर्गो वरेण्यम् वरेण्यम् भर्गः। इति भर्गो वरेण्यम्। भर्गो देवस्य देवस्य भर्गो भर्गो देवस्य। इति देवस्य भर्गः। देवस्य धीमहि धीमहि देवस्य देवस्य धीमहि। इति धीमहि देवस्य। धीमहीति धीमहि॥ धियो यो यो धियो धियो यः। इति यो धियः। यो नो नो यो यो नः। इति नो यः। नः प्रऽचोदयात् प्रऽचोदयान्नो प्रऽचोदयात्॥ प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

क्रम माला पाठ

ओ३म् तत्सवितु धीमहीति धीमहि। सवितुर्वरेण्यम् धीमहि देवस्य। वरेण्यम् भर्गो देवस्य भर्गः। भर्गो देवस्य भर्गो वरेण्यम्। देवस्य धीमहि वरेण्यम् सवितुः। धीमहीति धीमहि सवितुस्तत्॥ धियो यः प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्। यो नः प्रऽचोदयान्नः। नः प्रऽचोदयान्नो यः। प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात् यो धियः॥

रेखा पाठ

ओ३म् तत्सवितुः। सवितुस्तत्। तत्सवितुः॥ सवितुर्वरेण्यम् भर्गः। भर्गो वरेण्यम् सवितुः। सवितुर्वरेण्यम्॥ वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः॥ भर्गो देवस्य। देवस्य धीमहि। धीमहीति धीमहि॥ धियो यः। यो धियो। धियो यः। यो नः प्रऽचोदयात्। प्रऽचोदयान्नो यः। नः प्रऽचोदयात्। प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

रेखा पाठ सर्वस्य मन्त्रस्य

ओ३म् तत्सवितुः। सवितुस्तत्। तत्सवितुः॥ सवितुर्वरेण्यम् भर्गः। भर्गो वरेण्यम् सवितुः। सवितुर्वरेण्यम्॥ वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः॥ भर्गो देवस्य धीमहि धियो यः। यो धियो धीमहि देवस्य भर्गः। भर्गो देवस्य॥ देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रऽचोदयात्। प्रऽचोदयान्नो धियो धीमहि देवस्य। देवस्य धीमहि॥ प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

ध्वज

ओ३म् तत्सवितुः। प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥ सवितुर्वरेण्यम्। नः प्रऽचोदयात्॥ वरेण्यम् भर्गः। यो नः॥ भर्गो देवस्य। धियो यः॥ देवस्य धीमहि। धीमहीति धीमहि॥ धीमहीति धीमहि। देवस्य धीमहि॥ धियो यः। भर्गो देवस्य॥ यो नः। वरेण्यम् भर्गः॥ नः प्रऽचोदयात्। सवितुर्वरेण्यम्॥ प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्। तत्सवितुः॥

दण्ड पाठ

ओ३म् तत् सवितुः। सवितुस्तत्॥ तत् सवितुः। सवितु र्वरेण्यम्। वरेण्यम् सवितुस्तत्॥ तत् सवितुः। सवितु र्वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः। भर्गो वरेण्यम् सवितुस्तत्॥ तत् सवितुः। सवितु र्वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः। भर्गो देवस्य। देवस्य भर्गो वरेण्यम् सवितुस्तत्॥ तत् सवितुः। सवितु र्वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः। भर्गो देवस्य। देवस्य धीमहि। धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्यम् सवितुस्तत्॥ तत्सवितुः। सवितुर्वरेण्यम्। वरेण्यम् भर्गः। भर्गो देवस्य। देवस्य धीमहि। धीमहीति धीमहि॥ धियो यः। यो धियः॥ धियो यः। यो नः। नो यो धियः॥ धियो यः। यो नः। नः प्रऽचोदयात्। प्रऽचोदयान्नो यो धियः॥ धियो यः। यो नः। नः प्रऽचोदयात्॥ प्रचोदयादिति प्रऽचोदयात्॥

2. ओ३म् नमः॑ शम्भुवाय॑ च। यजुर्वेद १६.४१

सहिंता पाठ उदात्त अनुदात्त

देवता रुद्रा छन्द स्वरडार्षी बृहती स्वर मध्यम।

ओ३म् नमः॑ शम्भुवाय॑ च मयोभुवाय॑ च॒ नमः॑ शङ्कराय॑ च मयस्कराय॑ च॒ नमः॑ शिवाय॑ च शिवत॑राय च॥ यजुर्वेद १६.४१

भाषार्थः जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों का देनेवाला, कल्याण का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप धर्मयुक्त कार्यों को ही करने वाला, अत्यन्त मंगलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देनेहारा उसको बारम्बार नमस्कार हो।

पद पाठ

ओ३म् नमः । शम्भव इति शम्ऽभवे । च । मयोभव इति मयःऽभवे । च । नमः । शङ्करायेति शम् कराय । च । मयस्करायेति मयःऽकराय । च । नमः । शिवाय । च । शिवतरायेति शिव तराय । च ॥

क्रम पाठ

ओ३म् नमः शंभवे । शंभवे च । शंभव इति शं भवे । च मयोभवे । मयोभवे च । मयोभव इति मयः भवे । च नमः । नमः शंकराय । शंकराय च । शंकरायेति शं कराय । च मयस्कराय । मयस्कराय च । मयस्करायेति मयः कराय । च नमः । नमः शिवाय । शिवाय च । च शिवतराय । शिवतराय च ॥ शिवतरायेति शिव तराय ॥

जटा पाठ

ओ३म् नमश् शम्भवे शम्भवे नमो नमश् शम्भव । शम्भवे च च शम्भवे शम्भवे च । शम्भ्व इति शम्ऽभवे । च मयो भवे मयोभवे च च मयोभव । मयोभवे च च मयोभवे मयोभवे च । नमो नमश् च मयोभवे मयोभवे च नम । मयोभवे इतिमय भवे । च नमो नमश् च च नमः । नमश् शङ्कराय शङ्कराय नमो नमश् शङ्कराय । शङ्कराय च च शङ्कराय शङ्कराय च । शङ्करायेतिशंऽकराय । च मयस्कराय मयस्कराय च च मयस्कराय । मयस्कराय च च मयस्कराय मयस्कराय च । मयस्करायेति मयःऽकराय । च नमो नमश् च च नमः । नमश्शिवाय शिवाय नमो नमश्शिवाय । शिवाय च च शिवाय शिवाय च । च शिवतराय शिवतराय च च शिवतराय । शिवतराय च च शिवतराय शिवतराय च ॥ चेति च ॥

घन पाठ

ओ३म् नमश् शम्भवे शम्भवे नमो नमश् शम्भवे च च शम्भवे नमो नमश् शम्भवे च । शम्भवे च च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे मयोभवे च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे । शम्भ्व इति शम्ऽभवे । च मयो भवे मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च । मयोभवे च च मयोभवे मयोभवे च नमो नमश् च मयोभवे मयोभवे च नम । मयोभवे इतिमय भवे । च नमो नमश् च च नमश् शङ्कराय शङ्कराय नमश् च च नमश् शङ्कराय । नमश् शङ्कराय शङ्कराय नमो नमश् शङ्कराय च च शङ्कराय नमो नमश् शङ्कराय च । शङ्कराय च च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय मयस्कराय च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय । शङ्करायेतिशंऽकराय । च मयस्कराय मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च । मयस्कराय च च मयस्कराय मयस्कराय च नमो नमश् च मयस्कराय मयस्कराय मयस्कराय च नम । मयस्करायेति मयःऽकराय । च नमो नमश् च च नमश्शिवाय शिवाय नमश् च च नमश्शिवाय । नमश्शिवाय शिवाय नमो नमश्शिवाय च च शिवाय नमो नमश्शिवाय च । शिवाय च च शिवाय शिवाय च शिवतराय शिवतराय च शिवाय शिवाय च शिवतराय । शिवतराय च च शिवतराय शिवतराय च । चेति च ॥

3. ओ३म् सदसि सी दैता । यजुर्वेद तैतरीय १.१.११.२

सहिंता पाठ **उदात्त अनुदात्त** पाठ

ओ३म् सदसि सी दैता – असदन् – थ्सुकृ तस्य लोकेता विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञ पतिम् पाहिमाम्य यज्ञ नियम् ॥

घन पाठ

ओ३म् सदसि सीद सीद सदसि सदसि सी दैता ऽएतास् सीद सदसि सदसि सी दैता । सीदैता ऽएतास् सीद सी दैता ऽअसदन् नसदन् नेतास् सीद सी दैता ऽअसदन्न एता ऽअसदन् नसदन् नेता ऽएता ऽअसदन् ऽथ्सुकृतस्य सुकृतस्या सदन् नेता ऽएता – असदन् थ्सुकृतस्य । असदन् – थ्सुकृतस्य सुकृतस्या सदन् नसदन् ऽथ्सुकृतस्य लोके लोके सुकृतस्य सदन् नसदन् ऽथ्सुकृतस्य लोके । सुकृतस्य लोके लोके सुकृतस्य लोके तास् ता लोके सुकृतस्य लोके ता । सुकृतस्येति – सु कृतस्य । लोके तास् ता लोके लोके ता विष्णो विष्णो ता लोके लोके ता विष्णो । ता विष्णो विष्णो तास् ता विष्णो पाहि पाहि विष्णो तास् ता विष्णो पाहि । विष्णो पाहि पाहि विष्णो विष्णो पाहि पाहि पाहि पाहि विष्णो विष्णो पाहि पाहि विष्णो इति विष्णो । पाहि पाहि पाहि पाहि पाहि पाहि यज्ञम्य् यज्ञम् पाहि पाहि पाहि पाहि यज्ञम् । पाहि यज्ञम्य् यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् पाहि । यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम्य् यज्ञम् पाहि यज्ञ पतिम्य् यज्ञ पतिम् पाहि यज्ञम्य् यज्ञम् पाहि यज्ञ पतिम् । पाहि यज्ञ पतिम्य् यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम् पाहि । यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम्य् यज्ञ पतिम् पाहि माम् माम् पाहि यज्ञ पतिम्य् यज्ञ पतिम् पाहि माम् । यज्ञ पति मिति यज्ञ – पतिम् । पाहि माम् माम् पाहि पाहि माम्य् यज्ञ नियम्य् यज्ञ नियम माम् पाहि पाहि माम्य् यज्ञ नियम् । माम्य् यज्ञ नियम्य् यज्ञ नियम् माम् माम्य् यज्ञ नियम् । यज्ञ निय मिति यज्ञ ऽनियम् ॥

4. ओ३म् नमस्ताराय नम शम्भवे च । यजुर्वेद तैतरीय ४.५.८.१

सहिंता पाठ **उदात्त अनुदात्त** पाठ

ओ३म् नमस्ताराय नम शम्भवे च मयोभवे च नम शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय ॥

घन पाठ

ओ३म् नमस्ताराय ताराय नमो नमस्ताराय नमो नम स्ताराय नमो नमस्ताराय नम । ताराय नमो नमस्ताराय ताराय नमश्शम्भवे शम्भवे नमस्ताराय ताराय नमश्शम्भवे । नमश्शम्भवे शम्भवे नमो नमश्शम्भवे च च शम्भवे नमो नमश्शम्भवे च । शम्भवे च च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे मयोभवे च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे । शम्भ्व इति शम्ऽभवे । च मयो भवे मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च । मयोभवे च च मयोभवे मयोभवे च नमो नमश्च मयोभवे मयोभवे च नम । मयोभवे इतिमय भवे ।

च नमो नमश्च च नमश्शङ्कराय शङ्कराय नमश्च च नमश्शङ्कराय । नमश्शङ्कराय शङ्कराय नमो नमश्शङ्कराय च च शङ्कराय नमो नमश्शङ्कराय च । शङ्कराय च च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय मयस्कराय च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय । शङ्करायेतिशंऽकराय । च मयस्कराय मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च । मयस्कराय च च मयस्कराय मयस्कराय च नमो नमश्च मयस्कराय मयस्कराय मयस्कराय च नम । मयस्करायेति मयःऽकराय । च नमो नमश्च च नमश्शिवाय शिवाय नमश्च च नमश्शिवाय । नमश्शिवाय शिवाय नमो नमश्शिवाय च च शिवाय नमो नमश्शिवाय च । शिवाय च च शिवाय शिवाय च शिवतराय शिवतराय च शिवाय शिवाय च शिवतराय ।

5. संहिता पाठ

इस लेख में हम वेदों के 'संहितापाठ' के बारे में जानेंगे। वेदवाणी का प्रथम पाठ, जो गुरुओं की परम्परा से अध्ययनीय है और जिसमें वर्णों तथा पदों की एकश्वासरूपता अर्थात अत्यंत सानिध्य के लिए सम्प्रदायानुगत सन्धियों तथा अवसान (निश्चित स्थलों पर विराम) से युक्त एवम् १. उदात्त, २. अनुदात्त तथा ३. स्वरित इन तीन स्वरों में अपरिवर्तनीयता से पठनीय वेदपाठ को 'संहिता' कहते हैं। इसका स्वरूप है।

यह संहिता नामक वेदपाठ पुण्यप्रदा यमुना नदी का स्वरूप है तथा संहितापाठ से यमुना के स्नान का फल मिलता है कालिन्दी संहिता श्रेया। (याज्ञवल्क्यशिक्षा)।

ऋषियों ने मन्त्रों के संहिता रूप वेदपाठ का ही दर्शन किया और यज्ञ, देवता स्तुति आदि कार्यों में वेद के संहितापाठ का ही प्रयोग किया जाता है।

6. वेद गानम् वर्तमान साहित्य में उपलब्धता

जैसे ज्ञ देवनागरी वर्णमाला में 'ज्' और 'ञ' के योग से इसी तरह क्ष 'क्' व 'ष' बना हुए अक्षर है।

वेद पाठ करते समय अंतराल को अवश्य ध्यान रखें। जैसे इदन्न मम, ही बोलें इदन्नमम् सही उच्चारण नही है। मन्त्र उच्चारण करते समय शब्द ध्वनि, उनके अन्तराल व स्वरों का बोध उन श्रोताओं व स्वयं को अवश्य ही होना चाहिए जो ध्यान पूर्वक श्रवण कर रहें हैं। प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् रुपी सूत्र अवश्य ही उच्चारण करें।

वेद का उच्चारण, वाचन, पठन पाठन व गान गाने वालों को संस्कृत की वर्णमाला, जो कि स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार व वैदिक ध्वनि उच्चारण चिह्न मिलकर बनी है, वेद पाठ के लिये सही उच्चारण का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए।

वेद गायन ध्वनि व समय अन्तराल की दृष्टि से ह्रस्व अल्पकालीन स्वर है। इसका उच्चारण एक मात्रिक होता है अर्थात जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी एक बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए। दीर्घ लिंबे समय तक का उच्चारण द्विमात्रिक होता है अर्थात जितने समय में कलाई की नाड़ी दो बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए। प्लुत अधिक लिंबे समय तक इसका उच्चारण त्रिमात्रिक होता है अर्थात जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी तीन बार धड़कती है उतने समय तक उच्चारण करना चाहिए। जैसे ओ३म्। जो शब्द जैसे लिखा हो उसे वैसा ही बोलें।

वेद पाठ की गायन शैली की परम्परागत वैदिक विद्यालयों में धैर्य और कठिन परिश्रम के साथ विद्या प्राप्त की जा सकती है।

वेद गान के भिन्न भिन्न प्रकार हैं। इन पाठो का मूल पाठ पद पाठ होता है। पंडित दामोदर सातवेलेकर जी के सोलहवें वेद व्याख्यान को प्रमाणित मान करके विभिन्न पाठों का निर्माण करने का यह एक प्रयत्न है। जिसमें उन्होंने पच्चीस प्रकार के पाठों का वर्णन किया है जैसे संहिता पाठ, उदात्त अनुदात्त पाठ, सक्रम पद पाठ, व्युत्क्रम पद पाठ, क्रम पाठ, जटा पाठ, घन पाठ, शिखा पाठ, पञ्च सन्धि पाठ, माला पाठ, क्रम माला पाठ, ध्वज पाठ, दण्ड पाठ, रेखा पाठ, अर्धअर्चः पाठ (जुगलबन्दी), मण्डुकप्लुत पद पाठ (जुगलबन्दी), द्वि चक्री रथ पाठ, त्रि चक्री रथ पाठ, चतुष चक्री रथ पाठ इत्यादि।

सामवेद में आरण्यं गानम्, ग्राम गानम्, उह गान व उह्य गान भी गाया जाता है।

कृष्णदत्त जी शृङ्गी ऋषि महाराज द्वारा कुछ अन्य पाठ भी वर्णित किए गए हैं। कृतिकि पाठ, विसर्ग पाठ, मधु पाठ, उदात्त अनुदात्त, माला पाठ, मल्हार गान, मेघावली राग, मेघा राग, मोहिनी राग, मेघों का राग व दीपमालिका गान आदि के गायन करने वाले अभी समाज के स्तर पर प्राप्त नहीं होते क्योंकि यह विद्या प्राणों के परस्पर मिलान करने से ही सिद्ध होती है। जो कि हिमालय की कन्दराओं में आदि ऋषियों से प्राप्त की जा सकती हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि कागभुषुण्ड जी उपस्थित हुए ओर कागभुषुण्ड जी ने उपस्थित हो करके यह कहा चरणा मंगल गान गाया, देखो, वाम देव जो वेदमन्त्रों में वाम देव कहते हैं, जो मुनिवरों! देखो, जो सामगान है, मानो देखो, वामदेव गान गाया, और वामदेव गान गा करके, उन्होंने उच्चारण किया।

वेदों में स्वरों और छंदो, स्वर और व्यञ्जन सहित गायन की विद्या की मेरी जानकारी वैदिक छात्रों की दृष्टि में ही अभी प्रारम्भिक अवस्था में है यह लेख एक साधारण मानव के लिए सुलभ इस सूक्ष्म विषय की तकनीकी चर्चा करने के लिए बनाया जा रहा है।

पदों को संधि सहित या संधि रहित करने के उपरान्त पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अंश के व परवर्ती शब्द के प्रथम अंश में शब्दों के स्थान परिवर्तन के कारण वैदिक व्याकरण की दृष्टि से उनमें परिवर्तन हो जाता है। वेद पाठ के अनुसार यह परिवर्तन अनुदात्त, उदात्त और स्वरित चिह्नों में भी आता है। इसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए।

महर्षि पाणिनी और महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनके मुख्य मुख्य नियमों का समावेश किया है। इन्होने इस पूर्ण समुद्र रुपी विज्ञान को जाना है।

उदात्तादि स्वरों की सत्ता वैदिक भाषा की विशेषता है। वेद के वास्तविक अभिप्राय तक पहुँचने के जितने साधन है, उनमें स्वर शास्त्र सबसे प्रधान है। व्याकरण और निरुक्त जैसे प्रमुख शास्त्र भी स्वर शास्त्र के अंग बनकर ही वेदार्थ ज्ञान में सहायक होते है। स्वर शास्त्र का विरोध होने पर ये दोनों शास्त्र पंगु बने रहते है। स्वर ज्ञान के बिना न केवल मंत्र का वास्तविक अभिप्राय ही अज्ञात रहता है, अपितु स्वर शास्त्र की उपेक्षा से अनेक स्थानों में अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। इसलिए वेद के सूक्ष्मांतक अभिप्राय तक पहुँचने के लिए उदात्त आदि स्वरों का ज्ञान नितांत आवश्यक है।

स्वर शब्द लौकिक और वैदिक वाङ्मय में भिन्न अर्थो में प्रयुक्त होता है। वाक् वर्ण विशेष अत्+ऋणादि संगीत शास्त्र के स्वर यण, प्राण, सूर्य, प्रणव, उदात्तादि ध्वनि विशेष प्रस्तुत संदर्भ में स्वर शब्द से वैदिक वाङ्मय में प्रसिद्ध उदात्त, अनुदात्त, स्वरित संज्ञक उच्चारण विषयक वर्ण वर्गो का ग्रहण होता है।

वैदिक वाङ्मय में उदात्त आदि स्वरों के अनेक भेद उल्लिखित है, कहीं सात, कहीं पाँच, कहीं चार, कहीं तीन,कहीं दो और कहीं एक ही स्वर का उल्लेख मिलता है। महाभाष्य में सात स्वर गिनाये गए है। नाटक शिक्षा में ५ स्वर।

उदात्ताश्चानुदात्तश्चस्वरितप्रचितोतथा निपातश्चेति विधेय स्वरभेदस्तु पंचमः।

साधारणतया निपात शब्द अनुदात्त अर्थ में प्रसिद्ध है, शाकल, माध्यन्दित, कण्व, कौथुम, आदि संहिताओं में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरों का ही उच्चारण होता है। प्रचय स्वर का भी उल्लेख है।

स्वर शास्त्र के अनुसार **उदात्त** आदि समस्त स्वर उच्चारण वर्ण स्वर अर्थात् अच् संज्ञक वर्णो के धर्म है, व्यंजनों के नही। अच् ही ऐसे वर्ण हैजिनका उच्चारण बिना अन्य वर्ण की सहायता के होता है।

स्वयं सजन्त इति स्वराः। महाभाष्य।१।२।३०

उदात्त अनुदात्त और **स्वरित** स्वरों के लक्षण और उनके उच्चारण की विधि का उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है।

पाणिनीय मत उच्चैः उदात्तः, नीचैः अनुदात्तः, समाहारः स्वरितः। महाभाष्य।१।२।३१

जिस स्वर के उच्चारण में आयाम हो, उसे **उदात्त** कहते है, आयाम का अर्थ है, मात्रों का स्वर की तरफ खींचा जाना।जिस स्वर के उच्चारण में विलिंब हो, उसे **अनुदात्त** कहते है। मात्रों की शिथिलता या उनका अधोगमन विश्राम कहलाता है। जिस स्वर के उच्चारण में आक्षेप हो, उसे **स्वरित** कहते है, आक्षेप का अर्थ है मात्रों का निचैरगमन। इस प्रकार के निर्देशन के आधार पर ही शुद्ध उच्चारण कर पाना कठिन ही है। इन स्वरों का सुक्ष्म उच्चारण प्रकार चिरकाल से लुप्तप्राय है, महाराष्ट्र में कुछ बृहद् ऋग्वेदीय ब्राह्मण स्वरों के सूक्ष्म उच्चारण में कदाचित् समर्थ होते, परन्तु अधिकतर श्रोत्रिय हस्त आदि अंगचालन के द्वारा ही **उदात्त** आदि स्वरों का द्योतन करते है।

7. प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य शब्द का अर्थ है: 'प्रति' अर्थात् तत्तत् 'शाखा' से संबंध रखने वाला शास्त्र अथवा अध्ययन। यहाँ 'शाखा' से अभिप्राय वेदों की शाखाओं से है। वैदिक शाखाओं से संबद्ध विषय अनेक हो सकते थे। उदाहरणार्थ, प्रत्येक वैदिक शाखा से संबद्ध कर्मकांड, आचार आदि की अपनी अपनी परंपरा थी। उन सब विषयों से प्रातिशाख्यों का संबंध न होकर केवल वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण, वैदिक संहिताओं और उनके पदपाठों आदि के सधिप्रयुक्त वर्णपरिवर्तन अथवा स्वरपरिवर्तन के पारस्परिक संबंध और कभी कभी छंदो विचार जैसे विषयों से था। यहाँ वैदिक शाखाओं के प्रारंभ, स्वरूप और प्रवृत्ति को संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है। भारतीय वैदिक संस्कृति के इतिहास में एक समय ऐसा आया जबकि आर्य जाति के मनीषियों ने परंपरा प्राप्त वैदिक मंत्रों को वैदिक संहिताओं के रूप में संगृहीत किया। उस समय अध्ययनाध्यापन का आधार केवल मौखिक था। गुरु शिष्य की श्रवण परंपरा द्वारा ही वैदिक संहिताओं की रक्षा हो सकती थी। देश भेद और काल भेद से वैदिक संहिताओं की क्रमशः विभिन्न शाखाएँ हो गईं। वैदिक मंत्रों और उनकी संहिताओं को प्रारंभ से ही आर्य जाति की पवित्रतम निधि समझा जाता रहा है। उनकी सुरक्षा और अध्ययन की ओर आर्य मनीषियों का सदा से ध्यान रहा है। वैदिक संहिताओं की सुरक्षा और अर्थज्ञान की दृष्टि से ही वैदिक विद्वानों ने तत्तत् संहिताओं के पदपाठ का निर्माण किया। कुछ काल के अनंतर क्रमशः क्रमपाठ आदि पाठों का भी प्रारंभ हुआ। प्रत्येक शाखा का यह प्रयत्न रहा कि वह अपनी अपनी परंपरा में वैदिक संहिताओं के शुद्ध उच्चारण की सुरक्षा करे और पदपाठ एवं यथासंभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता में होने वाले उन पदों के वर्णपरिवर्तनों और स्वरपरिवर्तनों का यथार्थतः अध्ययन करे। मूलतः प्रातिशाख्यों का विषय यही था। कभी कभी छंदोविषयक अध्ययन भी प्रातिशाख्य की परिधि में आ जाता था। वैदिक शाखाओं के अध्येतृवर्ग 'चरण' कहलाते थे। इन चरणों की विद्वत्सभाओं या विद्यासभाओं को 'परिषद्' कहा जाता था। प्रतिशाख्यों की रचना बहुत करके सूत्र शैली में की जाती थी इसीलिए प्रातिशाख्यों के लिए प्रायेण 'पार्षदसूत्र' का भी व्यवहार प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। यास्काचार्य के निरुक्त में कहा गया है: अर्थात्, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं के प्रतिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्राचीन काल में सब वैदिक शाखाओं के अपने अपने प्रातिशाख्य रहे होंगे। संभवतः वैदिक शाखाओं समान, उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए। वर्तमान उपलब्ध विशिष्ट प्रातिशाख्य नीचे दिए जाते हैं।

यास्काचार्य के निरुक्त में कहा गया है : पदप्रकृतिः संहिता। पदप्रकृतिनि सर्व चरणानां पार्षदानि। (नि. 1/17)।

अर्थात्, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं के प्रतिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है।

इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्राचीन काल में सब वैदिक शाखाओं के अपने अपने प्रातिशाख्य रहे होंगे। संभवतः वैदिक शाखाओं समान, उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए। वर्तमान उपलब्ध विशिष्ट प्रातिशाख्य नीचे दिए जाते हैं।

प्रातिशाख्यों का विषय:

वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण,

पदपाठ एवं यथासंभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता में होने वाले उन पदों के वर्ण परिवर्तनों और स्वर परिवर्तनों का यथार्थतः अध्ययन

कभी कभी छंदोविचार जैसे विषय भी इनके विषय रहे हैं।

उपलब्ध प्रातिशाख्य:

शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य

कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रतिशाख्य

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य

अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका

शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य

परम्परा के अनुसार इसको ऋग्वेदीय शाकल शाखा की अवान्तर शैशिरीय शाखा से सम्बन्ध बतलाया जाता है।

प्रातिशाख्यों में यह सबसे बड़ा प्रातिशाख्य है।

इसमें छह छह पटलों के तीन अध्याय हैं।

वैसे प्रातिशाख्य पद्यों में निर्मित है। पर व्यख्याकारों ने पद्यों को टुकड़ों में विभक्त कर सूत्ररूप में ही उनकी व्याख्या की है।

इस प्रातिशाख्य के प्रथम 1 15 अध्यायों में शिक्षा और व्याकरण से संबंधित विषयों (वर्णविवेचन, वर्णोच्चारण के दोष, संहितागत वर्णसंधियाँ, क्रमपाठ आदि) का प्रतिपादन है

अंत के तीन (16 18) अध्यायों में छंदों की चर्चा है। छंदों के विषय का प्रतिपादन, यह ध्यान में रखने की बात है, किसी अन्य प्रातिशाख्य में नहीं है।

क्रमपाठ का विस्तृत प्रतिपादन (अध्याय 10 और 11 में) भी इस प्रातिशाख्य का एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है।

इस प्रातिशाख्य पर प्राचीन उवटकृत भाष्य प्रसिद्ध है।

प्रोफेसर M.A, Regnier द्वारा किया गया फ्रेंच भाषा में (1857 1859) अनुवाद उपलब्ध हैं।

प्रो॰ मैक्सम्यूलर द्वारा किया गया जर्मन भाषा में (1856 1869) अनुवाद उपलब्ध हैं।

कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रतिशाख्य

इस प्रातिशाख्य का संबंध शुक्ल यजुर्वेद से है।

यह प्रातिशाख्य सूत्रशैली में निर्मित है।

इस प्रातिशाख्य में आठ अध्याय हैं।

इस प्रातिशाख्य में प्रातिशाख्यीय विषय के साथ इसमें पदों के स्वर का विधान (अध्याय 2 तथा 6) और पदपाठ में अवग्रह के नियम (अध्याय 5) विशेष रूप से दिए गए हैं।

इस प्रातिशाख्य में पाणिनि की घु, घ जैसी संज्ञाओं के समान 'सिम्' (उसमानाक्ष), 'जित्' (क, ख, च, छ आदि) आदि अनेक कृत्रिम संज्ञाएँ दी हुई हैं। यह इस प्रातिशाख्य का एक वैशिष्ट्य है

अनेक प्राचीन आचार्यों के साथ साथ इस प्रातिशाख्य में शौनक आचार्य का भी उल्लेख है।

इस प्रातिशाख्य पर भी अन्य टीकाओं के साथ साथ उवट की प्राचीन व्याख्या प्रसिद्ध है।

इस प्रातिशाख्य पर प्रोफेसर A. Waber का जर्मन भाषा में अनुवाद (1858) उपलब्ध है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य

इस प्रातिशाख्य का संबंध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है।

यह प्रातिशाख्य भी सूत्रशैली में निर्मित है।

इस प्रातिशाख्य में 24 अध्याय हैं।

इस प्रातिशाख्य में सामान्य प्रातिशाख्यीय विषय के अतिरिक्त (अध्याय तीन और चार में) पदपाठ की विशेष चर्चा की गई है।

इस प्रातिशाख्य में 20 प्राचीन आचार्यों का उल्लेख है। यह इसकी एक विशेषता है

इस प्रातिशाख्य की कई प्राचीन व्याख्याएँ, त्रिभाष्यरत्न प्रसिद्ध हैं।

इस प्रातिशाख्य का प्रोफेसर W.D. Whitney कृत अंग्रेजी अनुवाद (1871) उपलब्ध हैं।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका

अथर्ववेद प्रातिशाख्य का संबंध अथर्ववेद की शौनक शाखा से है।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य भी सूत्रशैली में और चार अध्यायों में है।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य का आलोचनात्मक संस्करण, अंग्रेजी अनुवाद के सहित, प्रो॰ W.D. Whitney ने 1862 में प्रकाशित किया था।

ऋक्तंत्र नाम से एक साम प्रातिशाख्य प्रकाशित हो चुका है।

तीन प्रपाठकों में एक अथर्व प्रातिशाख्य प्रकाशित हो चुका है।

वैदिक शाखाओं के अध्येतृवर्ग 'चरण' कहलाते थे।

चरणों(अध्येतृवर्ग) की विद्वत्सभाओं को 'परिषद्' (या 'पर्षद्') कहा जाता था।

प्रतिशाख्यों की रचना अधिकतर सूत्र शैली में की जाती थी इसीलिए प्रातिशाख्यों के लिए प्रायेण 'पार्षदसूत्र' शब्द का भी व्यवहार प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

निरुक्त में कहा गया है : पदप्रकृति: संहिता। पदप्रकृतिनि सर्व चरणानां पार्षदानि।' (नि. 1/17)

अर्थात, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं के प्रतिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है।

8. शुद्ध वेदपाठ के कुछ नियम

वेदों की भाषा संस्कृत है। सर्वप्रथम हम संस्कृत भाषा के कुछ विशेष अक्षरों के नाम तथा उनके उच्चारण की विधि लिखते हैं।

इस (ं) आकृति वाले अक्षर को "अनुस्वार" कहा जाता है तथा नाक से वायु निकालते हुए बोला जाता है, उस समय मुँह बन्द रहता है, जैसे रामं।

इस (ँ) आकृति वाले अक्षर को "अनुनासिक" कहा जाता है और यह अक्षर भी नासिका से वायु निकालते हुए बोला जाता है। उस समय मुँह से भी कुछ वायु निकलती है। जैसे बोलूँ, कहूँ।

यह ७ अक्षर "अयोगवाह ह्रस्व" कहा जाता है। इस अक्षर का उच्चारण कांसे के पात्र पर डण्डा मारने से जो ध्वनि निकलती है वैसे होता है जैसे "अग्न आयूषि ७।

यह ९अक्षर "अयोगवाह दीर्घ" कहा जाता है। इस अक्षर का उच्चारण भी कांसे के पात्र पर डण्डा मारने से जो ध्वनि निकलती है वैसे होता है किन्तु इसका उच्चारण लम्बा करना

चाहिए जैसे सर्वं वै पूर्ण३... ।

इस (ळ) अक्षर को “यम” कहते हैं। इसका उच्चारण हिन्दी के ड और ल को मिलाकर करने के समान होता है अर्थात् जीभ को ऊपर से नीचे पटकते हुए किया जाता है।

इस (:) अक्षर को “विसर्ग" कहा जाता है इसका उच्चारण "ह" अक्षर से मिलता है जैसे रामः।

यह (ऽ) चिह्न “अवग्रह" कहा जाता है। यह चिह्न खाली स्थान का प्रतीक है। इसका उच्चारण कुछ भी नहीं होता।

किसी अक्षर के नीचे () इस प्रकार की टेढी लकीर होती है उसे “हलन्त" कहते हैं। जिस अक्षर के नीचे हलन्त हो उस अक्षर को बिना स्वर के अर्धमात्रिक रूप से बोलना चाहिए यथा तस्मात्, सम्यक्, विद्वान् आदि।

इस (ष) अक्षर को “मूर्धन्य षकार” कहते हैं। इसका उच्चारण मुँह में मूर्धा स्थान अर्थात् तालु के ऊपर से जीभ लगाकर करना चाहिए। इस (श) अक्षर को “तालव्य शकार" कहते हैं। इस अक्षर को मुँह के अन्दर तालु स्थान से अर्थात् दान्तों के ऊपर वहाँ से जीभ लगाकर उच्चारण करना चाहिए।

इस (स) अक्षर को "दन्त्य सकार” कहते हैं। इसका उच्चारण दान्तों में जीभ लगाकर करना चाहिए।

संस्कृत भाषा में (ज्ञ) इस आकृति वाले अक्षर में तीन अक्षर मिले होते हैं,वे हैं (ज् + ञ् + अ) अतः इसका उच्चारण ज् + ञ् + अ को ही मिला कर करना चाहिए न कि (ग्य) या (ग्न) या (द्न)।

संस्कृत भाषा में अ, इ, उ, ऋ, ल, ए, ओ, औ आदि अक्षर स्वर कहलाते हैं। इनके तीन भेद ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत होते हैं।

ह्रस्व इसका उच्चारण “एकमात्रिक" होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी एक बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए। उदाहरण अ, इ, उ।

दीर्घ इसका उच्चारण "द्विमात्रिक" होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी दो बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए। उदाहरण आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। प्लुत इसका उच्चारण “त्रिमात्रिक" होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी तीन बार धड़कती है उतने समय तक उच्चारण करना चाहिए। उदाहरण ओ३म्। १४. संस्कृत भाषा में क्, ख्, ग् घ् आदि अक्षर व्यञ्जन कहलाते हैं। ये सभी व्यञ्जन अर्धमात्रिक होते हैं, और इनका उच्चारण बिना स्वर के नहीं हो सकता। संस्कृत और हिन्दी भाषा में व्यञ्जनों का उच्चारण प्रायः व्यञ्जन के साथ स्वर को मिलाकर सिखाया जाता है जैसे क् + अ = क, ख + अ = ख, इत्यादि। बिना स्वर को संयुक्त किये व्यञ्जनों का उच्चारण ठीक प्रकार से होना कठिन होता है।

व्यञ्जन (आधे अक्षर) को पूरा न बोलें यथा तत् को तत, स्वः को सवः न बोलें। इसी प्रकार से स्वर सहित पूरे अक्षर को आधा न बोलें जैसे मम को मम्, ब्रह्म को ब्रह्म्। ये अशुद्ध उच्चारण हैं।

दीर्घ अक्षरों को ह्रस्व अक्षरों के समान न बोलें यथा 'भूः' का भुः, 'भूतस्य' को भुतस्य, “पृथिवी' को पृथिवि न बोलें।

जो शब्द जैसे लिखा हो उसे वैसा ही बोलें यथा 'भुवः' को भवह और 'करतलकरपृष्ठे' को कर्तल्कपृष्ठे न बोलें। 'योऽ३स्मान्' में आये इस ३ स्वर चिह्न को प्लुत न बोलें।

(।) विराम चिह्न पर जहाँ मन्त्र का एक भाग समाप्त होता है, वहाँ थोड़ा रुकें। यथा ओम् अग्नये स्वाहा। इदं .... यहाँ (।) विराम चिह्न पर रुकें। और जहाँ मन्त्र के मध्य में (,) ऐसा चिह्न आये वहाँ पर भी थोड़ा सा रुकें, यथा 'इदमग्नये इदन्न मम' यहाँ (,) इस चिह्न पर थोड़ा सा रुकें।

वेद मन्त्र के अन्तिम भाग को भी उसी गति से बोलें, जिस गति से पहले भाग को बोला गया है यथा 'ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।' यहाँ 'इदमग्नये इदन्न मम' को शीघ्र न बोलें अपितु पूर्वगति के समान धीरे धीरे ही बोलें।

दो पृथक् शब्दों को मिलाकर (एक बनाकर) न बोलें। यथा 'स दाधार' को सदाधार तथा 'स नो' को सनो बोलना अशुद्ध है।

ऋ अक्षर को र वा रि के समान न बोलें यथा 'हृदयम्' को हिरदयम्, 'सृष्टि' को सरिष्टि या सिरष्टि बोलना अशुद्ध है।

एक कर्म के मन्त्र समूह यथा 'ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना', 'स्वस्तिवाचन', 'शान्तिकरण', 'अघमर्षण', 'मनसापरिक्रमा', 'उपस्थान' आदि में आये मन्त्रों के प्रथम मन्त्र के पूर्व ही "ओ३म्" का उच्चारण करें, न कि प्रत्येक मन्त्र के पूर्व। ओ३म् को 'प्लुत' लम्बा करके भी बोलें। किसी भी मन्त्र से यज्ञ में आहुति देते समय मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' ही बोलें। स्वाहा से पूर्व 'ओ३म्' को न जोड़े।

9. पद पाठ

इस लेख में हम वेदों के पदपाठ के बारे में जानेंगे। वेदमंत्रों का सस्वर पाठ 'पदपाठ' कहा जाता है। वेद की संहिता पाठ की परम्परा के अनुसार स्वर वर्णों की सन्धि का विच्छेद करके वैदिक मन्त्रों का सस्वर पाठ पदपाठ कहा जाता है। स्वर के सम्बन्ध के अनुसार पद के ग्यारह प्रकार होते हैं। शिक्षा ग्रन्थों में कहा गया है नव पदशय्या एकादश पदभक्तयः। वेदमन्त्रों का पदपाठ पुण्यप्रदा सरस्वती देवनदी का स्वरूप है। पदपाठ करने से सरस्वती के स्नान का फल प्राप्त होता है पदमुक्ता सरस्वती (याज्ञवल्क्यशिक्षा)।

तैत्तिरीय आदि अनेक शाखाओं में संहिता के प्रत्येक पद का पद पाठ में साम्प्रदायिक उच्चारण है। ऋग्वेद में भिन्न पदगर्भित पदों में अनानुपूर्वी संहिता को स्पष्ट पदस्वरूप देकर पढ़ा जाता है। शुक्लयजुर्वेद की शाखाओं में प्रातिशाख्य के नियमों के अनुसार एकाधिक बार आए हुए विशेष पदों को पदपाठ में विलुप्त कर दिया जाता है। शास्त्रीय परिभाषा में ऐसे विलुप्त पदों को गलत्पद और ऐसे स्थल के पाठ को संक्रम कहा जाता है।

प्रगृह्य समाप्त होने वाले पदों के आगे पद पाठ में आद्युदात्त इति का प्रयोग किया जाता है। पदपाठ में प्रत्येक पद को अलग करने के साथ यदि कोई पद दो पदों के समास से बना हो, तो उसे माध्यान्दिनीय शाखा में इतिकरण के साथ दोहरा करके स्पष्ट किया जाता है। प्रातिशाख्य के नियमों के अनुसार कतिपय विभक्तियों में तथा वैदिक लोप, आगम, वर्ण विकार, प्रकृतिभाव आदि में भी 'इतिकरण' के साथ पद का मूल स्वरूप स्पष्ट किया जाता है।

पदपाठ में स्वर वर्णों की सन्धि का विच्छेद तथा अवग्रह आदि विशेष विधियों के प्रभाव से यह पाठ, संहिता से भी अधिक कठिन हो जाता है। इन नियमों के कारण ही यह पदच्छेद

नहीं है, किन्तु पदपाठ कहा जाता है।

इस लेख में हम वेदों के 'पदपाठ' के बारे में जानेंगे। वेदमंत्रों का सस्वर पाठ 'पदपाठ' कहा जाता है। वेद की संहितापाठ की परम्परा के अनुसार स्वरवर्णों की सन्धि का विच्छेद करके वैदिक मन्त्रों का सस्वर पाठ पदपाठ कहा जाता है। स्वर के सम्बन्ध के अनुसार पद के ग्यारह प्रकार होते हैं। शिक्षा ग्रन्थों में कहा गया है नव पदशय्या एकादश पदभक्तयः। वेदमन्त्रों का पदपाठ पुण्यप्रदा सरस्वती देवनदी का स्वरूप है। पदपाठ करने से सरस्वती के स्नान का फल प्राप्त होता है पदमुक्ता सरस्वती (याज्ञवल्क्यशिक्षा)।

10. पद पाठ के नियम

संहिता पाठ से पदपाठ बनाने का मौलिक आधार पद सज्ञान तथा पदों का पृथक्करण है। इसके लिए क्रमशः सन्धि विच्छेद, अवगृह करण, इतिकरण एवं अनुनासिकी करण के साथ साथ स्वर परिवर्तन आदि विविध सोपानों की आवश्यकता होती है जिन्हें संक्षेप में। निम्नवत् निरूपित किया जा सकता है।

सन्धिविच्छेद

संहिता पाठ की स्वरसन्धियों को पहले अलग अलग कर लेना चाहिए जैसे इन्द्रेहि = इन्द्र। आ। इहि॥ एमसि = आ। ईमसि।

स्वरसन्धियों के साथ साथ व्यञ्जनसन्धियों को भी अलग कर लेना चाहिए। जैसे विपाट्च्छुतुद्री = विपाट् + शुतुद्री।

जिस विसर्ग को 'ओ' लोप, 'र' या 'स्' या 'ष' हुआ हो उस शब्द को मूल विसर्गयुक्त अवस्था में कर देना चाहिए।

जैसे देवो देवेभिः = देवः। देवेभिः। देवास आसते = देवासः आसते।

संहिता पाठ के सन्धि विकारजन्य 'ष्' को 'स्' और 'ण' को न् कर देना चाहिए। जैसे ऊती ष वृहतः = ऊती। सः। बृहतः।

कहीं कहीं संहिता पाठ में कुछ वर्णों का लोप हो जाता है विशेषकर ईम्' के 'म' को और द्विचनान्त शब्दों के 'आ' का लोप हो जाता है। पदपाठ में इन्हें लगा लेना चाहिए। जैसे यम ई गर्भम् = यम्। ईम्। गर्भम्। धृतव्रत मित्रावरुण = धृतव्रता। मित्रावरुणा।

अनुस्वारान्त को मान्त करके लिखे, यथा क्रतुं परः = क्रतुम्। परः।

प्रत्येक प्रकार के सन्धिजन्य विकारों से रहित सर्वथा मौलिक पद का ही प्रयोग करें। जैसे प्लुति के कारण जहाँ स्वर दीर्घ हुए हों उन्हें ह्रस्व कर दें। यथा मक्षूमक्षू कृणुहि = मक्षुऽमक्षु कृणुहि। इसी प्रकार विवृति के व्यवधान को दूर करने के लिए लगाये गये अनुस्वार को भी हटा दिया जाता है शशदानाँ एषि = शशदान। एषि।

पदपाठ करते समय कहीं कहीं शब्दों के क्रम को भी बदलना पड़ता है। जैसे शुनश्चिच्छेपम् = शुनःशेपम् चित्।

अवग्रह का प्रयोग

अवग्रह का प्रयोग पदपाठ में अनेक स्थलों पर पद को एक साथ रखकर उन्हें पृथक प्रदर्शित करने के लिए अवगृह का प्रयोग किया जाता है। अवगृह प्रयोग के कुछ नियम इस प्रकार है

शब्दों के साथ लगी कुछ विभक्तियों को अलग करने के लिए मूल शब्द विभक्ति के बीच अवग्रह 'ऽ' चिह्न लगा देते हैं। इसके लिए प्रायः 'भ्' से शुरू होने वाले विभक्ति चिह्न (भ्याम्, भि, भ्यस) को शब्द से अलग कर देते हैं यदि उस शब्द के अन ह्रस्व स्वर हो और मूलशब्द में कोई मौलिक परिवर्तन न हुआ हो। यथा मरुद्भिः = मरुत्ऽभिः, हरिभ्याम् = हरिऽभ्याम्। चतुर्भिः = चतुःऽभि। किन्तु द्वाभ्याम्, अष्टाभिः, देवेभ्यः मं अवग्रह से अलग नहीं करते हैं। 'अस्मभ्यम्' और तुभ्यम में भी विभक्ति चिह्न अलग नहीं किये जाते हैं।

जब सप्तमी बहुवचन का विभक्ति चिह्न 'सु' को षु नहीं हुआ हो और न उसके पहले दीर्घ स्वर हो तो शब्द से अलग कर देते हैं।

उपसर्ग जब शब्द से मिले हों तो उन्हें अलग कर देते हैं जैसे प्रचेतः = प्रऽचेतः। अभिचक्षे = अभिऽचक्षे। उपस्थे = उपऽस्थे।

शब्दों के बाद लगने वाले प्रत्ययों को अलग कर देते हैं। वृत्रहा = वृत्रऽहा। देवत्वम् = देवऽत्वम्। किसी पद में उपसर्ग और प्रत्यय दोनों होने पर केवल प्रत्यय से पूर्व अवग्रह लगाते हैं।

नकारात्मक अर्थ वाले 'अन्' और 'अ' उपसर्ग अलग नहीं किये जाते हैं जैसे अजरः।

यदि एक शब्द में एक से अधिक उपसर्ग लगे हों तो पहले वाले उपसर्ग को ही अवग्रह द्वारा पृथक् करते हैं। सुप्रवचनम् = सुऽप्रवचनम्। इसके अपवाद भी मिलते है।

किसी शब्द के साथ जब 'इव' लगा हो तो 'इव' को ही अवग्रह लगाकर अलग करते हैं यदि ऐसे शब्द के पहले उपसर्ग भी लगा हो तो उसे अवग्रह द्वारा अलग नहीं करते हैं जैसे प्रगर्धिनीइव = प्रगर्धिनीऽइव।

समास से बने पदों को अवग्रह द्वारा अलग अलग कर दिया जाता है और समास होने से वर्णों में जो परिवर्तन हए हैं. उन्हें मौलिक रूप में कर देते हैं जैसे घोरवर्पसः = घोरऽवर्पसः, पुरोहितम् = पुरःऽहितम्।

जिस समास का पहला पद 'द्वा' हो उस 'द्वा' को अलग नहीं करते हैं द्वादश 'वनस्पति' समास को अलग नहीं करते हैं। .

पद की द्विरावृत्ति में अवगृह का प्रयोग होता है जैसे द्यविद्यवि = द्यविऽद्यवि, दिवेदिवे = दिवेऽदिवे।

सामासिक पद में दो से अधिक पद होने पर अन्तिम पद को अवगृह करना चाहिए।

जिस पद की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति हो सकती हो उसमें अवगृह का प्रयोग नहीं करते हैं जैसे रिशादशः।

इतिकरण

इतिकरण प्रगृह्य (ऐसे द्विवचन जिनके अन्त में ई, ऊ व ए हो उन्हे प्रगृह्य कहते हैं।) स्वरों से समाप्त होने वाले शब्दों के आगे पदपाठ में आद्युदात्त 'इति' का प्रयोग किया जाता है। इसे विस्तृत रूप में इस प्रकार समझ सकते हैं।

'ई' जब, द्वितीया का द्विवचनान्त हो या सप्तमी में हो तो प्रगृह्य होता है। इन द्विवचनान्त शब्दों या सप्तमी के रूप के बाद 'इति' लगता है जैसे द्यावापृथिवी = द्यावापृथिवी इति। रोदसी = रोदसी इति।

अमी' के ई को भी प्रगृह्य होता है। अमी = अमी इति।

द्विवचनान्त या सप्तमी में जब शब्द के अन्त में ऊ हो तो उसके साथ भी इति लगता है। इन्द्रवायू इति। धृष्णू इति। चमूइति।

'उ' के स्थान पर पद पाठ में 'ॐ इति' हो जाता है।

जब द्विवचनान्त शब्द के अन्त में 'ए' आये तो उसे भी प्रगृह्य होता है और पदपाठ में उसके साथ भी 'इति' लगता है। अबुध्यमाने = अबुध्यमाने इति।

जब 'ए' द्विवचनान्त क्रियारूप के अन्त में आवे तो उसके बाद भी 'इति' होता है। जैसे आशाते = आशते इति, नमते = नमेते इति। .

अस्मे, युष्मे, त्वे के बाद भी पदपाठ में 'इति' होता है।

जब सम्बोधन के अन्त में 'ओ' आवे तो उस शब्द के बाद इति होता है 'जैसे विष्णो = विष्णो इति।

जब 'ओ' स्वयं स्वतन्त्र शब्द हो तो उसके बाद इति होता है जैसे ओ इति। (x) अथो, उतो, यहो, तत्वो, भो के 'ओ' के बाद भी पदपाठ में 'इति' लगता है।

होतर् और नेष्टर् आदि शब्दों में विसर्ग होने के पहले मूल रूप में र रहा हो तो पदपाठ में उसके बाद इति लगता है, जैसे होतरिति।

इतिकरण के साथ पद का पुनरावर्तन

जिस पद में अवग्रह एवं इति दोनों का प्रयोग करना होता है उनमें पहले पद को यथावत् रखकर इति लगाते हैं तथा बाद में पद का अवग्रह सहित पुनरावर्तन करते हैं। कई अन्य स्थितियों में भी पद का पुनरावर्तन होता है जिन्हें निम्नवत् समझा जा सकता है

समासयुक्त पद के अन्त में जब 'ई' या 'ऊ' आवे अर्थात् सामासिक पद प्रगृह्य सञ्ज्ञक हो तो उस पद के बाद इति का प्रयोग करके पद का पुनरावर्तन करते हैं जैसे द्रवत्पाणी = द्रवत्पाणी इति द्रवत्ऽपाणी, वाजिनीवसू = वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू।

ईकारान्त एवं ऊकारान्न शब्द के बाद 'इव' आवे तो उस शब्द में इव के साथ इति लगता है और दुहराया जाता है जैसे दम्पतीइव = दम्पती इव इति दमत्पतीऽइव। संराणे = संरराणे इति सम्ऽरराणे इति।

स्युः और अकः' आदि शब्दों के बाद इति लगाकर दुहरा देते हैं जैसे अकः = अकरित्यकः।

स्वर परिवर्तन

स्वर परिवर्तन संहिता पाठ से पदपाठ करते समय होने वाली स्वर परिवर्तन प्रक्रिया को समझने हेतु सर्वप्रथम स्वरों की पारस्परिक सन्धि की स्थिति में बनने वाले स्वरों का ज्ञान आवश्यक है जिसे एक दृष्टि में निम्नवत् देखा जा सकता है।

उदात्त + **उदात्त** = **उदात्त**। **अनुदात्त** + **उदात्त** = **उदात्त**। **स्वरित** + **उदात्त** = **उदात्त**। **स्वरित** + **अनुदात्त** = **स्वरित**।

उदात्त + **अनुदात्त** = **उदात्त** (दो ह्रस्व इ कारों की सन्धि के अतिरिक्त प्रश्लिष्ट सहित में) **उदात्त** + **अनुदात्त** = **स्वरित** (प्रश्लिष्ट सन्धि में केवल इ + इ अर्थात् दो ह्रस्व इकारों की सन्धि होने पर तथा क्षैप्र एवं अभिनिहित सन्धि में सर्वत्र)।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि **अनुदात्त** की **अनुदात्त** या **स्वरित** के साथ सन्धि होने पर **अनुदात्त** होता है।

स्वरित और **अनुदात्त** तथा (कुछ स्थितियों को छोड़कर) **उदात्त** और **अनुदात्त** की सन्धि **स्वरित** होती है।

उदात्त और **स्वरित** की सन्धि नहीं होती है।

शेष स्थितियों में प्रायः **उदात्त** होता है।

स्वर परिवर्तन के सामान्य नियम

संहिता पाठ से पदपाठ करते समय संहिता पाठ गत **अनुदात्त** स्वर की स्थिति का विशेष ध्यान रखना होता है क्योंकि **उदात्त** स्वर तो प्रत्येक स्थिति में यथावत रहता है। प्रायः सर्वाधिक परिवर्तन **अनुदात्त** से **स्वरित** या **प्रचय** तथा **स्वरित** से **अनुदात्त** के रूप में ही होते हैं। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टाध्यायी ८.४.६६) के अनुसार **उदात्त** के बाद आने वाला **अनुदात्त** **स्वरित** हो जाता है यदि उसके बाद कोई **उदात्त** या **स्वरित** न हो। इसी प्रकार **स्वरित** के बाद के एक या अनेक **अनुदात्त** (**उदात्त** से ठीक पहले को छोड़कर) **प्रचय** हो जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि पूर्व पर स्वरों के आधार पर **अनुदात्त** ही कहीं **स्वरित** तथा कहीं **प्रचय** होता है और . स्थिति विशेष से परिवर्तित यह **स्वरित** या **प्रचय** उस स्थिति के न मिलने पर पुनः **अनुदात्त** हो जाता है। इस प्रकार पदपाठ करते समय प्रायः सन्धिज स्वरों की पहचान के साथ **अनुदात्त** **स्वरित** या **प्रचय** के पूर्व परस्थिति जन्यं पारस्परिक परिवर्तन को ही एक पहेली की तरह ध्यान में रखना होता है। वैसे तो यह स्वर परिवर्तन का रहस्य उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः पर आश्रित है फिर भी निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्वर परिवर्तन की सामान्य स्थितियों को अलग अलग इस प्रकार रूपायित किया जा सकता है।

संहिता में पूर्व पद के अन्तिम **उदात्त** के कारण उत्तर पद के आदि के अनुदान **स्वरित** हुआ हो तो उसे **अनुदात्त** कर दें। जैसे तिरः समुद्रम् = तिरः। समुद्रम्, आ गहि= आ गहि॥ अभि त्वां = अभिं त्वा।

इसी स्थिति में **स्वरित** से परे **प्रचय** **अनुदात्त** करें, प्रदेव वरुण व्रतम् = प्रदेव। वरुण। व्रतम्। सं भंरन्ति = सम्। भरन्ति।

संहिता पाठ में पूर्व पद के अन्तिम **स्वरित** के कारण उत्तर पद के आदि या सभी एक श्रुतियों को पदपाठ में **अनुदात्त** कर दें। जैसे युगानिं वितन्वते = युगानिं। वितन्वते, सधस्थं विचक्रमाणः = सधस्थंम्। विचक्रमाणः।

संहिता पाठ में उत्तर पद के आदि उदात्त या जात्यस्वरित होने के कारण. पूर्व पद का अन्तिम अनुदात्त स्वर यदि स्वरित न हुआ हो तो पदपाठ में उसे स्वरित कर दें। जैसे युस्य त्री = यस्यं। त्री, मध्व उत्सः = मध्वः। उत्सः।

संहिता पाठ में यदि पूर्व पद में स्वरित से उत्तरवर्ती अनुदात्त को उत्तर पद के आद्युदात्त या जात्यस्वरित होने पर प्रचय न हुआ हो तो पदपाठ में उसे प्रचय कर दें। जैसे भुवनानि विश्वा = भुवनानि। विश्वा, युध्यमाना अवसे = युध्यमानाः। अवसे।

जिस पद में अवग्रह एवं इति दोनों का प्रयोग करना हो और उसका अन्तिम वर्ण यदि उदात्त हो तो इति के स्वरित से परे किसी अनुदात्त को प्रचय नहीं करते हैं ... जैसे संरराणे = संरराणे इति सम्रराणे। अथवा समाराणे = समाराणे इति सम्ऽआराणे।

11. पद पाठ के नियम पण्डित युधिष्ठर मीमांसक रचित वैदिक स्वर मीमांसा अंश

सभी के लाभार्थ इस विषय का प्रतिपादन किया जाता है। हम यथासम्भव उन सभी नियमों का संग्रह करेंगे, जिनके अनुशीलन से संहिता पाठ को पद पाठ में यथार्थ रूप से परिवर्तन किया जा सके।

वेदमन्त्र के संहिता पाठ को पदपाठ

वेदमन्त्र के संहिता पाठ को पदपाठ में परिवर्तन करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

उदात्त आदि स्वरों के साधारण नियम।

पदपाठ में व्यवहार्य कतिपय विशिष्ट संज्ञाएँ।

संहितापाठ से पदपाठ करने के साधारण नियम।

पदस्वर संबन्धी नियम।

प्रगृह्य-संबन्धी नियम।

रिफित-संबन्धी नियम।

अवग्रह-सबन्धी नियम।

उदात्त आदि स्वरों के साधारण नियम

सहिता अथवा पदपाठ में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और एकश्रुति।

इस प्रकरण में ऋग्वेद के पदपाठ सम्बन्धी नियमों का ही उल्लेख होगा।

ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और शौनक अथर्व सहिता में उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं होता। वह प्रायः अनुदात्त से परे अथवा स्वरित से पूर्व चिह्न रहित होता है। अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा लगाई जाती है। स्वरित पर खड़ी रेखा लगाई जाती है। स्वरित से परे चिह्न रहित एक श्रुति स्वर वाले होते हैं।

ये चार स्वर प्रयुक्त होते हैं।

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और एकश्रुति स्वर अ इ उ आदि अचों (=स्वरों) के धर्म है, व्यञ्जनों के नहीं। इसलिए उदात्त आदि स्वरों के चिह्न शुद्ध अच् (=स्वर) अथवा व्यञ्जन सहित अच् पर ही लगाये जाते हैं, अच् रहित केवल व्यञ्जन पर नहीं। यथाः अग्निमीळे पुरोहितम्। ऋग्वेद १।१।१। यहाँ अच् रहित 'म' स्वररहित है।

पद में एक ही अक्षर उदात्त होता है। इसका कोई चिह्न नहीं लगाया जाता। (सुप्तिङन्तं पदम्। अष्टाध्यायी १.४.१४)

तवै प्रत्ययान्त समास में, तथा वनस्पति आदि कतिपय समस्त पदों में एक से अधिक भी उदात्त देखे जाते हैं। यथाः अन्वैतवे। ऋग्वेद १.२४.८॥ वनस्पतिः। १.९०.८॥ बृहस्पतिः। १.६२.३॥ इन्द्राबृहस्पती। ऋग्वेद ४.४९.५॥

उदात्त के अतिरिक्त समस्त अच् अनुदात्त हो जाते हैं। अनुदात्तं पदमेकवर्जम्। अष्टाध्यायी ६.१.१५८॥ यथाः अनुकामकृत्। ऋग्वेद ९.११.७॥ अनुयच्छमानाः। ऋग्वेद १.१०९.३॥

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः। अष्टाध्यायी ८.४.६६॥ यथाः यज्ञस्यं। ऋग्वेद १.१.१॥ अनुयच्छमानाः। ऋग्वेद १.१०९.३॥

स्वरित से परे जितने अनुदात्त होते हैं, उन्हें एकश्रुति हो जाता है। स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्। अष्टाध्यायी १.२.३९॥ यथाः अनिविशमानाः। ऋग्वेद ७.४९.१॥ अनुयच्छमानाः। ऋग्वेद १.१०९.३॥

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'अ' उदात्त है, शेष 'नि,वि,श,मा,नाः पाचों अनुदात्त होते हैं। तत्पश्चात् उदात्त 'अ' उत्तरवर्ती अनुदात्त 'नि' स्वरित होता है। तदनन्तर स्वरित 'नि' से उत्तरवर्ती 'वि श मा नाः चारों अनुदातों को एकश्रुति स्वर हो जाता है। इसी प्रकार 'अनुयच्छमाना: में भी समझें।

कभी कभी पद में उदात्त के स्थान में स्वरित भी मुख्य स्वर बन जाता है। यथाः मनुष्यं। ऋग्वेद १.५९.४॥ कुन्यां। ऋग्वेद १.१६१.५॥ यह स्वरित उदात्त की अपेक्षा नहीं करता। अत: इसे जात्य स्वरित कहते हैं।

कतिपय पदों में केवल अनुदात्त स्वर ही रहता है, उदात्त अथवा जात्य स्वरित नहीं होता। यथाः पद से परे संबोधन पृथिव्या इन्द्रं सदनेषु। ऋग्वेद १.५६.६॥ आमन्त्रितस्य च। अष्टाध्यायी ८.१.१९॥ पद से परे तिङन्त इन्द्रमभि प्र गायत। ऋग्वेद १.५.१॥ तिङ्ङतिङः। अष्टाध्यायी ८.१.२८॥ त्वम्। ऋग्वेद १.११३.५॥ संमस्मिन्। ऋग्वेद ८.२१.८॥ अस्यास्मैनस्वसमसिमेत्येतान्मनुच्चानि॥ फिट् सूत्र ४.१० (जर्मन सस्करण)। इस सूत्र में 'सिम' को अनुदात्त कहा है, अगले सिमस्याथर्षणेऽन्त उदात्त (४.११) में अथर्ववेद में अन्तोदात्त माना है। परन्तु ऋग्वेद में भी अन्तोदात्त ही देखा जाता है।

संहिता में उदात्त से परे अनुदात्त हो और उस अनुदात्त से परे उदात्त अथवा जात्य स्वरित हो तो उस उदात्त से परे विद्यमान अनुदात्त को स्वरित नहीं होता, अनुदात्त ही बना रहता

है। यथाः दे॒वम् ऋ॒त्विज॑म् = दे॒वमृ॒त्विज॑म्। ऋग्वेद १.१.१ ॥ यहाँ उदात्त 'व' से उत्तर अनुदात्त 'मृ' का स्वरित नहीं हुआ, क्योंकि उससे उत्तर 'त्वि' उदात्त है।

संहिता में स्वरित से परे निस अनुदान के आगे उदाच अथवा जात्य स्वरित होता है, उस स्वरित से परे विद्यमान अनुदाच को एकश्रुति स्वर नहीं होता, अनुदान ही रहता है।

यथाः य॒ज्ञस्य॑ दे॒वम् = य॒ज्ञस्य॑ दे॒वम्। ऋग्वेद १.१.१ ॥ होता॑रम् र॒त्न॒धात॑मम् = होता॑रं रत्न॒धात॑मम्। ऋग्वेद १.१.१ ॥

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'स्य' स्वरित से परे अनुदात्त 'दे' है, उससे परे 'व' उदात्त है। इसलिए 'दे' को एकश्रुति स्वर नहीं हुआ, अनुदात्त ही रहा। इसी प्रकार द्वितीय पाठ में 'ता' स्वरित है, उससे परे 'र र न' तीन अनुदात्त हैं, अन्तिम अनुदात्त 'त्न' से परे 'धा' उदात्त है। अतः पहले दो अनुदात्त 'र र' को एकश्रुति हो गई, परन्तु 'त्न' को एकश्रुति नहीं हुई।

पद पाठ में व्यवहार्य संज्ञाएँ

पद पाठ में चार सज्ञाएँ अधिक व्यवहार्य है पद, अवग्रह, प्रगृह्य और रिफित।

पद संज्ञा पद सज्ञा पाँच प्रकार की होती है। यथाः

जिस शब्द के अन्त में नाम की सु औ जस् आदि तथा आख्यात की तिप् तस् झि अथवा त आताम् झ आदि विभक्तियाँ होती हैं, उसे पद कहते हैं। सुप्तिङन्तं पदम्। अष्टाध्यायी १.४.१४ ॥

समास में पूर्वपद की विमक्तियों का लोप हो जाने पर भी समस्त शब्दों में पूर्व शब्द की पदसंज्ञा होती है। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्। अष्टाध्यायी १.१.६२ ॥

नाम को भ्याम् भिस् भ्यस् सुप् विभक्तियों के परे रहने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने।यचि भम्। अष्टाध्यायी १.४.१७,१८ ॥

यकारादि तथा अनादि प्रत्ययों को छोड़कर त्व ता तरप तमप् वत् मतुप् (वतुप्) आदि तद्धित प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है। तसौ मत्वर्थे। अष्टाध्यायी १.४.१९ ॥ (मतुप् अथवा मतुप् अर्थ वाले प्रत्यय के परे रहने पर तकारान्त और सकारान्त शब्द की पद संज्ञा नहीं होती।)

क्यच् क्यङ् क्यष् प्रत्यय परे रहने पर नकारान्त की पदसंज्ञा होती है। नः क्ये। अष्टाध्यायी १.४.१५ ॥

अवग्रह संज्ञा समास, अथवा भ्याम्, भिस् आदि नाम विभक्तियों, अथवा त्व, ता आदि तद्धित प्रत्ययों अथवा क्यच्, क्यष् आदि प्रत्ययों के परे रहने पर जिस पूर्ववर्ती शब्द की पद संज्ञा होती है, उस शब्द भाग को शेष भाग से पृथक करके दर्शाना अवग्रह कहाता है। वैयाकरणों के मत में इसे अन्तर्वर्ती पदसंज्ञा का निर्देश कह सकते हैं। ऋक्प्रातिशाख्य में अवग्रह के लिए 'परिग्रह' संज्ञा का व्यवहार मिलता है।

प्रगृह्य संज्ञा-निम्न पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

ईकारान्त ऊकारान्त एकारान्त द्विवचनान्त पद। ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्। अष्टाध्यायी १.१.११ ॥ यथाः अग्नी, वायू, कन्ये, पचेते, पचेथे आदि।

अमी पद। अदसो मात्। अष्टाध्यायी १.१.१२ ॥

शे प्रत्ययान्त युष्मे, अस्मे, त्वे, मे आदि पद ॥ शे। अष्टाध्यायी १.१.१३ ॥

एकस्वररूप निपात। निपात एकाजनाङ्। अष्टाध्यायी १.१.१४ ॥ यथा अ, इ, उ आदि। उ के विषय में आगे प्रगृह्य पद सम्बन्धी नियमों में विशेष विधान करेंगें।

ओकारान्त निपात। ओत्।अष्टाध्यायी १.१.१५ ॥ यथा आहो, उताहो, प्रो, यो, आदि।

सबुद्धि (सबोधन के एक वचन) में ओकारान्त शब्द इति परे। सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। अष्टाध्यायी १.१.१६ ॥

ईकारान्त, ऊकारान्त ऐसे शब्द जिनसे परे सप्तमी का लोप हो गया हो अथवा विभक्ति की उत्पत्ति नहीं हुई हो। ईदूतौ च सप्तम्यर्थे। अष्टाध्यायी १.१.१९ ॥ यथा गौरी, मामकी, तनू।

रिफित संज्ञा रेफान्त तथा सान्त दोनों प्रकार के पदों के रेफ और स् को खर (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) परे रहने पर अथवा विराम में विसर्ग हो जाते हैं। यथा कर् (लुङ् मध्यमैकवचन अट् का अभाव), कस् (किमादेश प्रथमा के एक वचन में)। स्वर् (अव्यय) स्वस् (स्व का प्रथमा का एक वचन)। ऐसे स्थानों पर सन्देह होता है कि संहिता में विसर्गान्त पढ़ा हुआ पद रेफान्त है अथवा सान्त ('सु' का)। इस सॅन्देह को दूर करने के लिए संहिता में जिन विसर्गान्त पदों को इकारादि पदों के परे 'र' भाव रहता है, उनकी रिफित संज्ञा की है।' विसर्जनीयो रिफितः। शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य १६० ॥ (शौनक प्रातिशाख्य में भी विविध शब्दों की रेफी संज्ञा कही है। परन्तु हमने यहां उतने अंश का ही उल्लेख किया है जितने का पद पाठ से प्रयोजन है।)

12. संहितापाठ से पदपाठ

संहितापाठ से पदपाठ करने के साधारण नियम मन्त्र के संहितापाठ को पदपाठ में परिवर्तित करने के लिए पद, पदस्वर, प्रगृह्य, रिफित और अवग्रहसबन्धी नियमों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

पद सम्बन्धी सामान्य नियम इस प्रकार है।

प्रत्येक पद के आगे पूर्ण विराम ' ।' का चिह्न लगाना चाहिए। उच्चारण में पूर्वपद और उत्तरपद (दो पदों) के मध्य ह्रस्व वर्ण के काल के बराबर के (एक मात्र काल) के बराबर रुकना चाहिए। (किन्ही किन्ही के मत में डेढ़ मात्रा काल का समय माना जाता है इसकी विवेचना आगे अवग्रह प्रकरण में की जाएगी)।

संहितापाठ में विद्यमान सम्पूर्ण सन्धियों को तोड़कर विशुद्ध पदरूप में उपस्थित करना चाहिए। यथाः सू॒नवे॑ऽग्ने सूपाय॒नो भ॑व = सू॒नवे॑। अग्ने॑। सु॒ऽउ॒पा॒य॒नः। भ॒व ॥ ऋग्वेद १.१.१ ॥ (एक पद को मध्य से तोड़ने के नियम मध्य से लिखे जाएगें।)

संहिता पाठ में अनुस्वारान्त पद को पदपाठ में 'म्' अन्त से निर्देश करना चाहिए। यथाः होता॑रं रत्न॒धात॑मम् = होता॑रम्। र॒त्न॒ऽधात॑मम्। ऋग्वेद १.१.१ ॥ ('स्पायनः, रत्नधातमम्' इन एक पदों को मध्य में तोड़ने के नियम अवग्रह प्रकरण में लिखेंगे।

जिस पद में केवल संहिता पाठ में ही दीर्घत्व देखा नाता हो, उसे पदपाठ में ह्रस्व करके दिखलाना चाहिये। यथाः अथा॑ते = अथ॑। ते॒। ऋग्वेद १ ।४ ।३ ॥ निपातस्य च। अष्टाध्यायी

६.३.१३६ ॥ विद्मा हि त्वा = विद्म। हि। त्वा। ऋग्वेद १.१०.१० ॥ द्व्यचोऽतस्तिङः। अष्टाध्यायी ६.३.१३५ ॥ वरुणो मामहन्ताम् = वरुणः। मामहन्ताम्। ऋग्वेद १.९४.१६ ॥ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य। अष्टाध्यायी १.१.७ ॥ ऋतावृधातस्पृशा=ऋतऽवृधौ। ऋतऽस्पृशा ॥ ऋग्वेद १.२.८ ॥ अष्टाध्यायी सूत्र ६.३.११६ में वृधि के उपसख्यान से अथवा अष्टाध्यायी से ॥ यहां क्रमशः 'अथा विद्मा मामहन्ताम् ऋतावृधौ' को 'अथ विद्म मम हन्ताम्-ऋतऽवृधौ' कर दिया जाता है।

पदस्वर सम्बन्धी नियम संहितापाठ मे वर्तमान स्वरों को पदपाठ में इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए।

संहिता में पूर्वपद के अन्तिम **उदात्त** के कारण उत्तरपद के आदि के **अनुदात्त** को "**स्वरित**" (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः। अष्टाध्यायी ८.४.६६ ॥) हुआ हो तो उसे पदपाठ में **अनुदात्त** ही दर्शाना चाहिए और उससे अगले एकश्रुति स्वर को भी **अनुदात्त** ही दिखाना चाहिए। यथाः अग्निमीळे = अग्निम्। ईळे। ऋग्वेद १.१.१ ॥

संहिता में पूर्वपद के अन्त्य **स्वरित** के कारण उत्तरपद के आदि में विद्यमान एकश्रुति को **अनुदात्त** दर्शाना चाहिए। यथाः अग्ने सूपायनो = अग्ने। सुऽउपायनः। ऋग्वेद १.१.९ ॥

यदि संहिता पाठ में उत्तरपद के आदि **उदात्त** (अथवा जात्य **स्वरित**) परे रहने के कारण पूर्वपद के अन्त्य **अनुदात्त** को **स्वरित** न हुआ। हो तो उसे पदपाठ में **स्वरित** दिखाना चाहिए। यथाः नमो भरन्तः=नमः। भरन्तः ॥ ऋग्वेद १.१.७ ॥

यदि संहितापाठ में पूर्वपद में **स्वरित** से उत्तरवती **अनुदात्त** को उत्तरपद के आदि **उदात्त** (अथवा जात्य **स्वरित**) के कारण एकश्रुति न हुई हो, उसे पदपाठ में एकश्रुतिरूप में दर्शाना चाहिए। यथाः ऋषिभिरीड्यो नूतनैः = ऋषिभिः। ईड्यः। नूतनैः। ऋग्वेद १.१.२ ॥

प्रगृह्य सम्बन्धी नियम प्रगृह्य संज्ञक पदों को पदपाठ में निम्न नियमों के अनुसार दिखाना चाहिए।

प्रगृह्य संज्ञक पद के आगे आद्युदात्त 'इति' शब्द का निर्देश करना चाहिए और उसकी पूर्व के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए। परन्तु स्वर के विषय में संहिता के समान कार्य करने चाहिए। यथाः अग्नी इति। ऋग्वेद ५.४५.४ ॥ अजरयू इति। ऋग्वेद १.११६.२० ॥ आसाते इति। ऋग्वेद २ ।४१.५ ॥ आसाथे इति। ऋग्वेद ५ ।६२ ।५ ॥ वायो इति। ऋग्वेद १.२.१। संहिता में पढ़े गए 'उ' निपात से आगे 'इति' शब्द का प्रयोग करके 'उ' को 'ॐ रूप में दर्शाना चाहिए॥ उञः। अष्टाध्यायी १.१.१७ ॥ ऊँ। अष्टाध्यायी १.१.१८ ॥ अन्वेतवा उं = अनु एतवे। ॐ इति ॥ ऋग्वेद १ ।२४ ।८ ॥ इमा उ = इमाः। ॐ इति। ऋग्वेद १.१२६.५ ॥

जिस पद में प्रगृह्य संज्ञा और अवग्रह (अवग्रह के नियमों के अनुसार) दोनों कार्य दर्शाने हों, वहाँ पहले प्रगृह्य संज्ञा के पद का निर्देश करके उसके आगे इति का प्रयोग करना चाहिए, तत्पश्चात् उसी पद की पुनः आवृत्ति करके अवग्रह दर्शाना चाहिए। यथाः चित्रभानो इति चित्रऽभानो। ऋग्वेद १.३.४ ॥ आयजी इत्यांऽयजी। ऋग्वेद १.२८.७ ॥

प्रगृह्य पद, इति तथा अवगृहीत तीनो पदों के **अनुदात्त** आदि स्वरों में संहितावत् यथायोग्य परिवर्तन करने चाहिएं। यथाः चित्रभानो इति चित्रऽमानो। ऋग्वेद ५.२६.२ ॥

रिफित सम्बन्धी नियम

संहितापाठ में रेफान्त पद को जहाँ विसर्ग हो जाता है, वहाँ सन्देह होता है कि वह विसर्गान्त रूप उसी में मिलते जुलते सकारान्त पद का है अथवा रेफान्त का। इस सन्देह को मिटाने के लिए पदकार आचार्य जिस विसर्गान्त पद को रेफान्त पद का रूप समझते हैं, उसको पदपीठ में इति शब्द लगाकर निर्देश करते हैं। यथाः पुक्रमन्तः पयः = पुक्रम्। अन्तरिति। पयः ॥ ऋग्वेद १.६२.९ ॥ दिवो दुहितः प्रत्नवन् = दिवः। दुहितरिति। प्रत्नऽवत्। ऋग्वेद ६.६५.६ ॥ यहाँ प्रथम उदाहरण में अन्तर शब्द का और अकारान्त 'अन्त' के प्रथमा के एकवचन में एक जैसा रूप बन सकता है। अतः यहाँ अकारान्त का 'अन्तः' रूप नहीं है, यह दर्शाना अभीष्ट है। द्वितीय उदाहरण में दुहितृ शब्द, का संबोधन में 'दुहितर' होकर 'दुहितः' रूप बना है। दुह धातु से छान्दस नियम से इट् आगम होकर 'क्त' प्रत्यय का रूप भी 'दुहित.' सम्भव है। अतः मन्त्र में दुहितृ का रूप है, दुहित का नहीं, यह दर्शाया है।

रेफान्त 'स्वर' शब्द के 'स्व.' पद का अकारान्त 'स्व' शब्द के प्रथमा विभक्ति के एकवचन के 'स्वः' रूप से भेद दर्शाने के लिए पूर्व नियम के अनुसार इति शब्द का प्रयोग करते है। परन्तु यहाँ इति शब्द के अनन्तर 'स्वः' पद को पुनः पढते हैं। यथाः स्वः परिभूः = स्व१ रिति स्वः। परिऽभूः। ऋग्वेद १.५२.१२ ॥

यहाँ **उदात्त** इति के परे '१' संख्या का निर्देश अध्याय दस के सूत्र १४ के अनुसार होता है। संहिता के सामान्य नियम के अनुसार जात्य **स्वरित** 'स्वः' के परे **अनुदात्त** 'ति' को **स्वरित** नहीं हो सकता। परन्तु यहाँ पद सम्बन्धी यह विशेष नियम समझना चाहिए कि **स्वरित** परे रहने पर भी **अनुदात्त** को **स्वरित** हो जाता है। इसी नियम को बतलाने के लिये ही यहाँ 'इति' से आगे पुन. 'स्वः' की आवृत्ति की है।

आख्यात संज्ञक रेफान्तं पदं के नामसंज्ञक सान्त पद (विभक्ति के सकार के कारण) के साथ होने वाले सन्देह की निवृत्ति के लिए पूर्व नियम १ से इति पद का प्रयोग करते हैं और उसके आख्यातत्व धर्म को बताने के लिए उसकी पुनरावृत्ति करते हैं। यथाः एतशे कः = एतशे। करिति कः। ऋग्वेद ५ ।२९ ।५ ॥ पातवे वाः = पातवे। वारिति वाः ॥ ऋग्वेद १.११६.२२ ॥ यहाँ प्रथम उदाहरण में 'कः' 'कृ' धातु के लुट् के मध्यम पुरुष के एकवचन का रूप है, 'अट' का आगम नहीं होता। इसका 'किम्' के 'कः' रूप से सादृश्य है। दूसरे उदाहरण में 'वाः' 'वार' रेफान्त का रूप है।

कहीं कहीं विसर्गान्त सान्त शब्दों के आख्यात और नाम का भेद दर्शाने के लिए भी आख्यातपद से 'इति' शब्द का निर्देश करके आख्यातपद को पुनरावृत्ति दर्शाते हैं। यथाः देवं भाः देवम्। भारिति भाः। ऋग्वेद १.१२८.२ ॥

यहां 'भाः 'भा दीप्तौ' के मध्यम पुरुष के एकवचन 'मास्' का रूप है। ऐसा ही 'भाः' पद सान्त 'भास' शब्द का भी बनता है।

एक स्थान पर 'अस्' धातु के आख्यात रूप 'स्त.' का 'स्तृ' के स्तर् = 'स्तः' रूप से भेंट दर्शाने के लिए भी इति का प्रयोग और पुनरावृत्ति दर्शाई है। यथाः स्तु इति स्तः। ऋग्वेद ८ ।३ ।२ ॥

अवग्रह सम्बन्धी नियम

पदच्छेद करते समय जिन पदों में 'भ्याम् भिस' अथवा 'त्व ता तरप् तमप' आदि प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व भाग की अवग्रह (पद) संज्ञा हो उसे तथा समास के पूर्वपद को उत्तर

भाग से पृथक करके दर्शाना चाहिए।

अवग्रहसंज्ञक भाग को पृथक् दर्शाने के लिए उसके आगे ऽ चिह्न का प्रयोग करना चाहिए। दोनों भागों के उच्चारण में अर्धमात्रा काल का व्यवधान करना चाहिए। (कात्स्यायन प्रातिशाख्य में 'अवग्रहो ह्रस्वसमकाल' (५.१) ह्रस्व समकाल एकमात्राकाल माना है। कैयट ने महाभाष्य १.१.७ की व्याख्या में 'अर्धमात्रा काल' लिखा है। नागेश ने दोनों मतों के विरोध का समाधान करते हुए लिखा है दो अव्यवहित वर्णों के उच्चारण में जिस अत्यल्प काल का अन्तर अवश्यमावी होता है। दो वर्णों के उच्चारण के लिए दो प्रयत्न करने होते हैं, दोनों प्रयत्नों के मध्य में यदि सूक्ष्म काल का व्यवधान न माना जाए तो प्रयत्नों का द्वित्व नहीं बनता। एक प्रयत्न से दो वर्ण बोले नहीं जाते। इसलिए इस अवश्यभावी काल व्यवधान का परिमाण अर्धमात्रा काल माना जाता है। जो इस अवश्यभावी काल की उपेक्षा करते हैं, वे अवग्रह में 'अर्धमात्रा काल का व्यवधान कहते हैं और जो इस भवश्यभावी काल को अवग्रह के अर्धमात्रा काल में जोड़ देते हैं, चे एकमात्राकाल का व्यवधान मानते हैं। इस प्रकार दोनों मतों में कोई भेद नहीं।) यथाः अप्ऽसु। ऋग्वेद १.२३.१६ ॥ कण्वंऽतमः। ऋग्वेद १.४८.४ ॥ कण्वंऽसखा। ऋग्वेद १०.११५.५ ॥ आऽवजंते। ऋग्वेद १.३३.१ ॥

अवमहसंज्ञक भाग में उत्तरभाग के कारण यदि कोई सन्धि हुई हो तो उस सन्धि को दूर करके शुद्ध रूप में दर्शाना चाहिए। यथाः अद्भिः अप्ऽभिः। यजुः ६.१८ ॥ अब्जाः अपऽजाः। ऋग्वेद ४.४०.५ ॥ पुरोहितम् पुरःऽहितम्। ऋग्वेद १.१.१ ॥ अन्वेतवै = अनुऽएतवै। ऋग्वेद १.२४.८ ॥

अवग्रहसंज्ञक भाग में यदि ऐसा दीर्घत्व हो जो लोक में दिखलाई न पड़ता हो, तो अवग्रह दर्शाते समय उसे ह्रस्व कर दिया जाता है। यथाः पुरुतमम् पुरुऽतमम्। ऋग्वेद १.५.२ ॥ ऋतेन ऋतावृधौ = ऋतऽवृधौ। १.२.८ ॥

नकारान्त शब्द से मतुप् (वतुप), तरप् , तमप् इन प्रत्ययों के परे रहने पर 'न' के आगे अवग्रह का चिह्न लगाना चाहिए। यथाः अक्षण्वन्तः = अक्षन्ऽवन्तः। ऋग्वेद १०.७१.७ ॥ अस्थन्वन्तम् = अस्थन्ऽवन्तम्। ऋग्वेद १.१६४.४ ॥ मदिन्तरः = मदिन्ऽतरः। ऋग्वेद ८ ।२४ ।१६ ॥ दुस्युहन्तमम् = दुस्युहन्ऽतमम् ।ऋग्वेद ६.१६.१५ ॥

विशेष पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन प्रयोगों में नान्त शब्द के न का लोप होता है। तदनन्तर अष्टाध्यायी ८ ।२ ।१६,१७ से प्रत्यय को नुट् का आगम होता है। इसलिए, पाणिनीय मतानुसार अवग्रह 'अक्षऽन्वत दस्युहऽन्तमः ऐसा पाता है। पदकार शाकल्य ने अपने व्याकरणानुसार पदपाठ की रचना की है। सम्भव है उनके व्याकरण में 'मतुप तरप् तमप' प्रत्ययों के परे रहने परे नान्त पद के न का लोप न माना हो।

समासयुक्त कृदन्त हलन्त अथवा ह्स्वान्त शब्द से परे 'तरप तमप्' प्रत्यय हुए हो तो वहाँ कृदन्त भाग के आगे अवग्रह का चिह्न किया जाता है। यथाः दस्युहन्तमः = दुस्युहन्ऽतमः। ऋग्वेद ६ ।१६ ।१५ ॥ देव्वयंचस्तमः = देवव्यंचःऽतमः। ऋग्वेद ५ ।२२ ।२ ॥ देववाततमः = देववातऽतमः। ऋग्वेद ६ ।२६ ।४ ॥ चित्रश्रंवस्तमः = चित्रश्रंवःऽतमः। ऋग्वेद ३१५६ ॥६ ॥

समामयुक्त कृदन्त भाग यदि दीर्घान्त हो और उससे परे 'तरप् तमप' प्रत्यय हुए हों तो वहाँ समासयुक्त कृदन्त भाग में पूर्वपद के उत्तर अवग्रह का चिह्न किया जाएगा। यथाः रत्नधातमम् = रत्नुधातमम्। ऋग्वेद १.१.१ ॥ अश्वसातमः = अश्वऽसातमः। ऋग्वेद १.१७५.५ ॥ देववीतमः = देवऽवीतमः। ऋग्वेद १.३६.९ ॥

जहाँ कृदन्त का दो उपसर्गों के साथ समास होता है, वहाँ प्रथम उपसर्ग के आगे अवग्रह का चिह्न किया जाता है। यथाः दुर्नियन्तुः = दुःऽनियन्तुः। ऋग्वेद १.१९०.६ ॥

जहाँ पदपाठ में अवग्रह और प्रगृह्य दोनों सज्ञाएँ दिखानी होती है, वहां पहले अवग्रहरहित पद का निर्देश करके 'इति' का निर्देश किया जाता है और उसके अनन्तर उसी पद की आवृत्ति करके अवग्रह दर्शाया जाता है। यथाः देवशिष्टे इति देवऽशिष्टे। ऋग्वेद १.११३.३ ॥ संबन्धू इति संऽबन्धू। ऋग्वेद ३.१.१० ॥ संरणे इति सम्ऽरणे। ऋग्वेद ६.७०.६ ॥

संहितापाठ में जहाँ एक पद की द्विरावृत्ति (द्विर्वचन) होता है, वहाँ पदपाठ में द्विरावृत्ति (दोनों) को एक पद समान मानकर पूर्व के अनन्तर अवग्रह दर्शाया जाता है। यथाः दिवेदिवे = दिवेऽदिवे। ऋग्वेद १.१.३ ॥ प्रप्र = प्रऽप्र। ऋग्वेद १.४०.७ ॥ संसं = सम्ऽसंम्। ऋग्वेद १०.१९१.१ ॥

संहिता में जहाँ आख्यात (तिङन्त) उदात्त हो और अव्यवहितपूर्व उपसर्ग अनुदात्त हो, वहा उपसर्ग और आख्यात को समस्त पद मानकर उपसर्ग के आगे अवग्रह दर्शाया जाता है। यथाः प्रवीचति = प्रऽवोचति। ऋग्वेद ५.२७.४ ॥ अभिशासति = अभिऽशासति। ऋग्वेद ६.५४.२ ॥ निवेशयन् = निऽवेशयन्। ऋग्वेद १.३५.२ ॥

संहिता में जहां आख्यात अनुदात्त हो, परन्तु उससे अव्यवहित दो उपसर्ग प्रयुक्त हों और उन दोनों में पहला उपसर्ग अनुदात्त हो और दूसरा उदात्त हो तो वहा तीनों पदों को समस्त मानकर प्रथम उपसर्ग से अवग्रह दर्शाया जाता है। यथाः अन्वालेभिरे = अनुऽआलेमिरे। ऋग्वेद १०.१३०.७ ॥ प्रत्यावर्तय = प्रतिआवर्तय। ऋग्वेद ६.४७.३१ ॥ विप्रयन्तः = विऽप्रयन्तः। ऋग्वेद ९.२२.५ ॥

नञ्समास और द्वन्द्वसमास में अवग्रह नहीं दर्शाया जाता। यथाः अजरः। ऋग्वेद १.५८.२ ॥ अदब्धाः। ऋग्वेद १.१७३.१ ॥ अनपत्यानि। ऋग्वेद ३.५४.१८ ॥ अनवद्यः। ऋग्वेद ९.६९.१० ॥ द्यावाक्षामा। ऋग्वेद १.९६.५ ॥ इन्द्रवायू। ऋग्वेद १.२.४ ॥

जिस पद की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति हो सकती है, उसमें अवग्रह नहीं दर्शाया नाता। यथाः आशुशुक्षणिः। ऋग्वेद २.१.१ ॥ यहाँ 'आ शुशुक्षणि है, अथवा 'आशु शुक्षणि' है, अथवा 'आशु शुक्षणि' है, यह सन्दिग्ध है। (आशु इति च शु इति च क्षिप्रनाम्नी भवतः, क्षणिरुत्तरः..... आ इत्याकार उपसर्गः पुरस्तात्, चिकीर्षितजः उत्तरः। निरुक्त ६.११ ॥)

कात्यायन ने कहा है पाङ्क्तान् उद्गोऽभ्राय संशयात् [नावगृह्यन्ते] (प्रातिशाख्य ५.३४)। अर्थात्-पाङ्क्तान् उद्गः अभ्राय इन पदों में व्युत्पत्ति के सशय के कारण अवग्रह नहीं दर्शाया जाता। (इनकी विविध व्युत्पत्तियों के लिए देखो इस सूत्र का उव्वट भाष्य। तुलना करो कैयट (महाभाष्य प्रदीप ३.१.१०९) तदुक्तम् इरिद्रुर्नावगृह्यते हरिद्रुरित्यत्र किं हरिशब्द इकारान्त, अथ हरिच्छवदस्तकारान्त इति सन्देहात् ॥

जहां 'भ्याम् भिस भ्यस नाम् सु' विभक्तियों के परे शब्द के अन्तिम अ इ उ ऋ को दीर्घ या अन्य विकार हो जाता है, वहां अवग्रह नहीं दर्शाया जाता। यथाः हस्त = हस्ताभ्याम्। ऋग्वेद १०.१३७.७ ॥ आदित्य = आदित्येभिः। ऋग्वेद १.२०.५ ॥ आदित्येषु। ऋग्वेद ८ ।२७ ।३ ॥ मति = मतीनाम्। ऋग्वेद १.४६.५ ॥ मधु = मधूनाम्। ऋग्वेद १.११७.६ ॥ पितृ = पितॄणाम्। ऋग्वेद १.१०९.३ ॥

अवग्रह में स्वर सचार एकपदवत् मानकर किया जाता है। यथाः सबंन्धू इति सऽबंन्धू। ऋग्वेद ३.१.१० ॥ दुस्युहन्ऽतंमः। ऋग्वेद ६.१६.१५ ॥ चित्रश्रंवःऽतमः। ऋग्वेद ३.५९.६ ॥

यहां प्रथम और द्वितीय उदाहरणों में अवगृहीत उदात्त 'स' से परे 'बन्धू' के अनुदात्त को स्वरित तथा एकश्रुति हो गई। तृतीय में अवगृहीत पद के 'श्र' के स्वरितत्व को मानकर उत्तरभाग के अनुदात्तों को एकश्रुति हो गई।

जिस पद में अवग्रह दर्शाना हो, उसके उत्तरभाग का अन्तिम अक्षर उदात्त हो तो 'इति' शब्द के स्वरित 'ति' से परे किसी अनुदात्त को एकश्रुति नहीं होती। यथाः सुरराणे इतिं सुम्ऽरराणे। ऋग्वेद ७.७०.६ ॥

इति के साथ स्वरसन्धि हो जाने पर भी एकश्रुति नहीं होती। यथाः आमिमाने इत्यांऽमिमाने। ऋग्वेद १.११३.२ ॥

अवगृह्यमाण पद में यदि पूर्वभाग अन्तोदात्त हो तो 'इति' शब्द के स्वरित 'ति' से परे पूर्वभाग के अनुदात्तों को एकश्रुति नहीं होती, परन्तु पूर्वभाग के अन्तिम उदात्त से परे उत्तरभाग में स्वरितत्व और एकश्रुति हो जाती है। यथाः सुमानबंन्धू इतिं सुमानवंन्धू। ऋग्वेद १.११३.२ ॥

उपसंहार

मन्त्र के संहितापाठ को पदपाठ में परिवर्तित करने के जो नियम ऊपर लिखे हैं, वे ऋग्वेद के पदपाठ के अनुसार हैं। शुक्ल यजु के माध्यन्दिन और काण्व शाखा, कृष्ण यजुर्वेद, के तैत्तिरीय, मैत्रायणी आदि, सामवेद और अथर्ववेद के पदपाठों के नियमों में कुछ कुछ अपनी अपनी विशेषताएं हैं। उन सबका वर्णन यहा विस्तारमय में नहीं किया।

यह प्रकरण केवल एम. ए. और शास्त्री के विद्यार्थियों के लिए ही लिखा गया है। उनके पाठ्यक्रम में प्रायः ऋग्वेद के ही अंश रहते हैं, इसलिए केवल ऋग्वेद के पदपाठ के नियम दिए हैं।

कहा कहा अवग्रह नहीं होता, यह पूर्णतया उस उस शाखा के प्रातिशाख्यों से ही जाना जा सकता है। उन्हें किन्हीं विशेष नियमों में बांधना असम्भव है। प्रातिशाख्यकारों ने भी प्रायः पद गिना दिए हैं। इसलिए इस एक अंश को छोड़कर अन्य नियम प्राय: सब लिख दिए है। इनका ध्यान रखने से पिच्यानवे प्रतिशत पटपाट शुद्ध रूप में निरूपित किया जा सकता है।

13. वैदिक वर्ण और स्वर

वैदिक वर्ण और स्वर

सभी वेदमन्त्र संहिताओं में चिन्ह का आकार भिन्न हो सकता है लेकिन उनका स्वरांकन प्रणाली एक जैसी ही है। इसमें कोई भेद नही है।

वर्ण वैदिक व्याकरण में १३ स्वर तथा ३९ व्यञ्जन वर्णों को मिलाकर कुल ५२ ध्वनियाँ हैं जिन्हें निम्न सारणी में समनित रूप से देखा जा सकता है .

स्वर

(क) समानाक्षर अ, आ, इ, ई, उ,ऊ, ऋ,ॠ, ऌ = ०९

(ख) सन्ध्यक्षर ए, ओ, ऐ, औ

व्यञ्जन

(क) स्पर्श क से म तक (ख) अन्तस्थ य, र, ल, व। (ग) सोष्म श, ष,स, ह (ध) अनुस्वार विसर्ग (ङ) जिह्वामूलीय उपध्मानीय

योग = ५०

ळ तथा ळहू = ०२

ळ तथा ळह लौकिक संस्कृत के व्यञ्जनों के अतिरिक्त वैदिक संस्कृत में ये दो. व्यवञ्जन अधिक होते हैं। दो स्वरों के बीच में आने पर डकार को ळकार हो जाता है (द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य, सम्पद्यते स डकारो ळकारः)। यदि वही 'ड्'ह' के साथ आवे तो 'ळह' हो जाता है (ळहकारतामेति स एव चास्य डकार सन्नूष्मणा संप्रयुक्तः)।

स्वर

(Accent) स्वर वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषता है। वेद के अध्ययन में स्वर शास्त्र की अप्रतिम महत्ता है। 'स्वर' शब्द स्वृ धातु से घ प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। निघण्टु में स्वर पद 'गत्यर्थक आख्यातों में पठित है। अतः स्वर शब्द का निर्वचन होगा। यह मुख्यता पांच होते हैं। **उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय, निघात।**

स्वर्यन्तेऽर्था एभिः अर्थात् इससे पदों के अर्थ जाने जाते हैं।'

अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्। एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्याः स्फुटा इति ॥

ये स्वर (accent) अच् अर्थात् स्वर (Wovel) के ही धर्म हैं। ये मुख्य रूप से उदात्त अनुदात्त एवं स्वरित। उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च त्रयः स्वराः आयामविश्रम्भाक्षेपैस्त उच्यन्ते।

उदात्त

'उदात्त' शब्द 'उत्' तथा 'आ' पूर्वक 'दा' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार 'उदात्त' का शाब्दिक अर्थ है ऊपर उठाकर ग्रहण किया हुआ।

उच्चैरादीयते इति उदात्तः अर्थात् उच्च स्वर से जिसका ग्रहण अर्थात् उच्चारण होता है वह उदात्त है। वायु के कारण उच्चारणावयवों के ऊपर जाने को 'आयाम' कहते हैं। उस आयाम से जो उच्चारित होता है वह उदात्त है। आयामो नामूर्ध्वगमनं गात्राणां वायुनिमित्तम्। जिन स्वरों के उच्चारण में गात्रों का आरोह हो अर्थात् उच्चारणावयव ऊपर की ओर खिंच जाते हैं उन्हें उदात्त कहते हैं। लघु सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार

उच्चैरुदात्तः अर्थात् ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्त सञ्ज्ञः स्यात्।

कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के ऊपर के भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको उदात्त कहते हैं। वैदिक ग्रन्थों में इनकी पहचान के लिए चिह्न लगे होते हैं जोकि सभी।

ग्रन्थों में समान नहीं है। ऋग्वेद में उदात्त पर कोई भी चिह्न नहीं लगाया जाता। .

अनुदात्त

'अनुदात्त' शब्द अन् उत् तथा आ पूर्वक दा धातु में क्त प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है, जिसका व्युत्पत्ति लभ्य शाब्दिक अर्थ है ऊपर उठाकर न ग्रहण किया हुआ।

नीचैरादीयते इत्यनुदात्तः अर्थात् उच्चारण अवयवों के नीचे जाने से जिस स्वर का ग्रहण अर्थात् उच्चारण होता है वह अनुदात्त कहलाता है। ऋग्वेद में 'अनुदात्त के नीचे एक पड़ी रेखा (-) लगायी जाती है।

ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार अनुदात्त का उच्चारण 'विश्रम्भ' से होता है विश्रम्भो नामाधोगमनं गात्राणां वायुनिमित्तम्। अर्थात् वायु के कारण उच्चारणावयवों के नीचे जाने को विश्रम्भ कहते हैं उस विश्रम्भ से जो उच्चारित होता है वह अनुदात्त है।

पाणिनि के अनुसार नीचैरनुदात्तः अर्थात् ताल्वादिषु संभागेषु स्थानेष्वधो भागे निष्पन्नोऽच् अनुदात्त सञ्ज्ञः स्यात्" अर्थात् कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के नीचे भाग से जिस अच् का उच्चारण होता है वह अनुदात्त होता है। अतः अनुदात्त स्वर के उच्चारण में गानों का अवरोह होता है।

अनुदात्त स्वर संहिता में उदात्त से प्रभावित होता रहता है। नियमतः उदात्त से परे रहने वाला अनुदात्त वर्ण स्वरित हो जाता है यदि उसके परे कोई उदात्त या स्वरित न हो। इस अनुदात्त के स्वरित हो जाने पर परवर्ती उदात्त के पूर्व के समस्त अनुदात्त वर्ण प्रचय हो जाते है।

स्वरित

"स्वरित' शब्द ध्वनि अर्थक स्वृ धातु से निष्पन्न हुआ है। स्वरित का शाब्दिक अर्थ है ध्वनित या उच्चारित।

"स्वरः सञ्जातः यस्मिन् सः स्वरितः अर्थात् स्वर उत्पन्न किया जाता है जिसमें वह स्वरित होता है।

ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः"

अर्थात् "पूर्व वाले दो (उदात्त और अनुदात्त) का एक अक्षर में समाहार अर्थात समावेश होने पर स्वरित स्वर निष्पन्न होता है। स्वरित में उदात्त और अनुदात्त दोनों स्वरों के गुणों का मेल होता है। ऋग्वेद में 'स्वरित' के सिर पर एक खड़ी रेखा लगायी जाती है; जैसे (।)

ऋप्रातिशाख्य के अनुसार स्वरित का उच्चारण आक्षेप से होता है।

"आक्षेपो नाम तिर्यगमनं गात्राणां वायु निमित्तम्" अर्थात् वायु के कारण उच्चारण अवयवों के तिरछा जाने को आक्षेप कहते हैं उस आक्षेप से जो उच्चारित होता है वह स्वरित है।

स्वरित का उच्चारण ध्वनि के आरोह तथा अवरोह से होता है। स्वरित के उदात्तांश के उच्चारण में ध्वनि का आरोह एवं अनुदात्त अंश के उच्चारण में अवरोह होता है। स्वरित की आधी मात्रा अथवा सम्पूर्ण स्वरित का आधा भाग उदात्त से उच्चतर उच्चारित होता है। स्वरित का परवर्ती अवशिष्ट अनुदात्त अंश उदात्त के समान सुना जाता है। यदि उस स्वरित के बाद में विद्यमान अक्षर उदात्त अथवा स्वरित उच्चारित न हो यतोहि

तस्योदात्ततरोदात्तादर्धमात्रार्धमेव वा। अनुदात्तः परः शेषः स उदात्तश्रुति न चेत्॥ उदात्तं वोच्यते किञ्चित् स्वरितं वा अक्षरं परम्॥

पाणिनीय व्याकरण में इसे उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः कहकर परिभाषित किया गया है।

स्वरित में उदात्त एवं अनुदात्त का मिश्रण तिल तण्डुल अथवा काष्ठ जन्तु के समिश्रण के सदृश होता है अर्थात् स्वरित में उदात्त तथा अनुदात्त धर्मों का समिश्रण सभी अवयव समान रूप से नहीं होता। स्वरित के आदि भाग में उदात्त धर्म रहता है और बाद वाले आधे भाग में अनुदात्त धर्म रहता है।

इसीलिए व्याकरण के अनुसार समाहारः स्वरितः अर्थात् उदात्तानुदात्तत्वे वर्ण धर्म समाह्रियते यत्र सोऽच् स्वरित् सञ्ज्ञः स्यात्।

उदात्तत्व एवं अनुदात्तत्व दोनों वर्गों का मेल जिस वर्ण में हो वह स्वरित होता है। अर्थात तालु आदि स्थानों के मध्य भाग में जिस 'अच् का उच्चारण होता है उसे स्वरित कहते हैं।

स्वरित के कई भेद होते हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

स्वरित के तीन भेद हैं।

उदात्तपूर्व, जात्य, सन्धिज।

उदात्तपूर्व के तीन भेद पाए जाते हैं। वैवृत, तैरोव्यञ्जन, तैरोऽवग्रह।

जात्य के दो भेद पाए जाते हैं। अपूर्व, नीचपूर्व।

सन्धिज के तीन भेद पाये जाते हैं। प्रश्लिष्ट, क्षैप्र, अभिनिहित।

१. उदात्तपूर्व स्वरित, उदात्त से परे रहने वाला अनुदात्त जब स्वरित हो जाता है तब उस स्वरित को उदात्त पूर्व, सामान्य, परतन्त्र स्वरित आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

उदात्तपूर्व स्वस्तिमनुदात्तं पदेऽक्षरम् अर्थात् वह स्वरित स्वभाव से अनुदात्त ही होता है, पूर्ववर्ती उदात्त के प्रभाव से यह स्वरित हो जाता है। परिस्थितिवश पूर्ववर्ती उदात्त के हट जाने पर यह स्वरित अपने मूल रूप 'अनुदात्त में ही परिवर्तित हो जाता है। इसके तीन। उपभाग है।

(क) वैवृत्त स्वरित संहिता में दो स्वर वर्गों के उच्चारण के मध्य में विद्यमान काल के व्यवधान को विवृत्ति कहते हैं स्वरान्तरं तु विवृत्तिः।

ऐसे स्थानों में पदान्त उदात्त स्वर के परे जहाँ पदादि अनुदात्त स्वरित हो जाता है उसे वैवृत्त स्वरित कहते हैं यथा यः। इन्द्र। सोमोऽपातमः = य इन्द्र सोम पातमः॥

(ख) तैरोव्यञ्जन स्वरित जहाँ व्यञ्जन का व्यवधान होने पर भी पूर्ववर्ती उदात्त के कारण परवर्ती अनुदात्त स्वरित हो जाता है तो उसे तैरोव्यञ्जन स्वरित कहते हैं। इसे व्यञ्जनव्यवहित स्वरित भी कहते हैं

तिरोऽन्तर्धानं व्यञ्जनं यस्येति तैरोव्यञ्जनम्। जैसे अग्निम् ईडे = अग्निमीळे।

(ग) तैरोऽवग्रह स्वरित जब पूर्ववर्ती उदात्त और परवर्ती अनुदात्त के मध्य में अवग्रह थे व्यवधान होने पर भी अनुदात्त स्वरित हो जाता है तब उसे तैरोऽवग्रह स्वरित कहा जाता है। यथा उुषऽउंष, गणऽर्पंतिम्।

२. जात्यस्वरित जात्यस्वरित का शाब्दिक अर्थ है स्वभाव से ही स्वरित अर्थात् उदात्त और अनुदात्त की संगति के विना जो स्वरित उत्पन्न होता है उसे जात्य स्वरित कहते हैं। इसे स्वतन्त्र स्वरित भी कहते हैं।

अतोऽन्यत्स्वरितं स्वारं जात्यमाचक्षते पदे। अर्थात् एक पद में उदात्तपूर्व स्वरित ..अन्य जो स्वरित स्वर है उसे जात्यस्वरित कहते हैं अर्थात् पद में जिस स्वरित के पूर्व उदात्त' नहीं होता है उसे जात्य स्वरित कहते हैं।

जात्य स्वरित सभी परिस्थतियों में स्वरित रहता है अर्थात् यह कभी भी अनुदान के रूप में दिखलायी नहीं पड़ता इसीलिए इसे नित्य स्वरित भी कहते हैं।

जात्य स्वरित प्रायः यु अथवा वु में अन्त होने वाले संयुक्त वर्ण के बाद वाले स्व. वर्ण पर आता है। दूसरे शब्दों में प्रायः एक ही पद में क्षैप्र सन्धि से जायमान स्वरित जात्य स्वरित होता है। यह दो प्रकार का होता है

(क) अपूर्व जात्यस्वरित जिस जात्य स्वरित के पूर्व में कोई भी स्वर नहीं होता है। उसे अपूर्व जात्य स्वरित कहते हैं यथा स्वंः, क्वंः न्यंक् आदि।

(ख) नीच पूर्व जात्यस्वरित जिस जात्यस्वरित के पूर्व में अनुदात्त स्वर होता है, वह नीच पूर्व जात्य स्वरित है। यथा कन्या, हृदय्या आदि।

३. सन्धिज स्वरित, जहाँ दो अक्षरों की सन्धि के साथ साथ अक्षरों के धर्म भूत स्वरों की भी सन्धि होती है और वह संध्य स्वर स्वरित होता है तो उस स्वरित को सन्धिज के नाम से अभिहित किया जाता है। ये तीन हैं

(क) प्रश्लिष्ट स्वरित, पाणिनीय व्याकरण की दीर्घ गुण और वृद्धि संधियों को ऋक प्रातिशाख्य में प्रश्लिष्ट संधि कहा गया है। इसी प्रश्लिष्ट संधि के कारण होने वाला स्वरित 'प्रश्लिष्ट' स्वर कहा जाता है

उदात्तवत्येकीभावं उदात्तं संध्यक्षरम्। अर्थात् प्रश्लिष्ट संधि में एक ओर का स्वर वर्ण उदात्त होने पर संध्य स्वर वर्ण भी उदात्त होता है। किन्तु इकारयोश्च प्रश्लेषे क्षैप्राभिनिहितेषु च। उदात्त पूर्वरूपेषु शाकल्यस्यैवमाचरेत्॥

दो ह्रस्व इकारों की प्रश्लिष्ट संधि में पदान्त उदात्त और पदादि अनुदात्त की संधि से सर्वदा स्वरित की निष्पत्ति होती है यथा स्रुचिऽइव। घृतम् = स्रुचीव घृतम्

(ख) क्षैप्र स्वरित पाणिनीय व्याकरण की यण सन्धि ही क्षेप सन्धि है। क्षेप्र सन्धि के कारण होने वाला स्वरित क्षैप्र कहलाता है। क्षैप्र सन्धियों में उदात्तपूर्व में होने पर अनुदात्त बाद में होने पर संध्य स्वर स्वरित होता है।

अर्थात् जब क्षैप्र सन्धि में उदात्त विशिष्ट इ या ई तथा उ या ऊ के बाद में कोई असवर्ण स्वर होने पर क्रमशः य और व बन जाता है तब परवर्ती अनुदात्त विशिष्ट स्वर क्षेत्र सज्ञक स्वरित होता है। उदाहरणार्थ नु। इन्द्र = न्विंन्द्र।

(ग) अभिनिहितस्वरित पाणिनीय व्याकरण की पूर्वरूप सन्धि' ही अभिनिहित सन्धि है। अभिनिहित सन्धि के कारण होने वाला स्वरित अभिनिहित स्वरित कहलाता है।

ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार अभिनिहित सन्धियों में उदात्त पूर्व में होने पर अनुदात्त से की गयी सन्धि का सन्ध्य स्वर स्वरित होता है। अर्थात् जब पूर्ववर्ती उदात्त ए या ओ के साथ परवर्ती अनुदात्त अ का एकीभाव हो जाता है तब सन्ध्य स्वर अभिनिहित स्वरित होता है; . यथा ते। अवर्धन्त = तेंऽवर्धन्त।.

प्रचय

'प्रचय' शब्द प्र उपसर्ग पूर्वक चि धातु से निष्पन्न हुआ है प्रचय का अर्थ है आधिक्य। पूर्ववती स्वरित के कारण एक से अधिक अनुदात्त प्रचय हो जाते हैं। (जब तक कि कोई उदात्त नहीं आ जाता) इसी अधिक अनुदात्तों के प्रचय हो जाने के कारण ही इसे प्रचय संज्ञा से अभिहित किया जाता।

प्रचय हो जाने पर अनुदात्त उदात्त के समान उच्चरित होता हुआ नीची ध्वनि से उच्चारित होने वाला स्वर अब ऊँची ध्वनि से उच्चारित होने लगता है ध्वनि के इस आधिक्य के कारण भी अनुदात्त स्वर प्रचय कहा जाता है।

स्वरित के बाद में आने वाले अनुदात्तों का 'प्रचय' स्वर हो जाता है। ऐसी अवस्था में वे अनुदात्त उदात्त के समान सुनाई पड़ते हैं, चाहे वे एक हों, दो हों या बहुत हों स्वरितादनुदात्तानां परेषां प्रचयः स्वरः। उदात्त श्रुतितां यान्त्येक द्वे वा बहूनि वा॥

प्रचय स्वर मूलतः अनुदात्त होता है। जब पूर्ववर्ती 'स्वरित स्वर' के प्रभाव से 'अनुदात्त' अनुदात्त के समान उच्चारित न होकर उदात्त के समान उच्चारित होने लगता है तब वह प्रचय कहलाता है। अतः प्रचय कोई स्वतन्त्र स्वर नहीं है।

ऋक प्रातिशाख्य के अनुसार उदात्त या स्वरित परे होने पर प्रचय का उच्चारण उदात्त के समान न होकर अनुदात्त के समान ही होता है। कतिपय आचार्य अन्तिम प्रचय का अनुदात्त उच्चारण करते हैं. कुछ अन्तिम दो प्रचयों का एवं कुछ प्रथम प्रचय को छोडकर अन्य सभी प्रचयों का अनुदात्त उच्चारण करते हैं, केचित्वेकमनेकं वा नियच्छन्त्यन्तोऽक्षरम्। आ वा शेषात्।

प्रचय का यह वैशिष्ट्य है कि इसका उच्चारण उदात्तवत् एवं अनुदात्त वत दोनों ही कि भांति परिस्थित्यनुसार होता है। प्रचय भी उदात्त की भाँति अचिन्हित रहता है। अतः ज्ञातव्य है कि स्वरित से परे अचिन्हित स्वर प्रचय होते हैं एवं अनुदात्त के बाद में या स्वरित से पूर्व विना चिह्न वाला स्वर उदात्त होता है। जिस प्रचय के तुरन्त बाद उदात्त होता है उस. (उदात्त पूर्व) पचय को अनुदात्त चिन्हित कर दिया जाता है। जैसे स जंनासु इन्द्रंः कम्प, स्वरित के बाद में उदात्त होने पर पहले वाले उदात्ततर और बाद वाले उदात्त उच्चारणों के मध्य में अनुदात्त का उच्चारण करने में कठिनाई होना स्वाभाविक है क्योंकि स्वरित के प्रथम अंश का उदातर के रुप में उच्चारण करने के तुरन्त बाद ही अनुदात्त अंश का उच्चारण करने के लिए ध्वनि को नीचे उतरना पड़ता है और परवर्ती उदात्त का उच्चारण करने के लिए ध्यान को पुनः तुरन्त ही ऊपर चढ़ना पड़ता है।. ऐसी स्थिति में स्वरित के अनुदात्त

अंश का उच्चारण झटके के साथ होता है इस झटके को ही कम्प करते हैं। ऐसी स्थिति सदैव जात्यस्वरित तथा सन्धिज स्वरित के साथ होती है।

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षेतः प्रश्लिष्ट एव च। पने स्वराः प्रकम्पन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः॥

अर्थात उदात्त या स्वरित बाद में होने पर जात्य अथवा अभिनिहित, क्षैप्र अथवा प्रश्लिष्ट स्वरित स्वर कम्म को प्राप्त होता है।

यदि यह कम्प ह्रस्त स्वरित वर्ण के अनुदान्त अंश में हो तो कम्प दिखलाने के लिए ह्रस्व स्वरित वर्ण के बाद १ संख्या को लिखते समय उस संख्या के ऊपर ऊपर स्वस्ति का चिह्न (।) एक भी अनुदात्त का चिह ( ) लगाया जाता है।

यदि कम्प दीर्घ स्वरित रबर के अनुदान अंश में हो तो कम्प दर्शाने के लिए दीर्घ स्वरित स्वर के बाद ३लिखकर ऊपर स्वस्ति मजा एवं नीचे अनुदान का चिाह लगाया जाता है। अभीइदम्।

क्रमशः चारों प्रकार के स्वरित में कम्य के उदाहरण निम्नवत् देखे जा सकते हैं।

१. जात्य स्वरित, तिष्यः। यथा = तिष्योश्यथा।

२. अभिनिहित स्वरित, दिवः। अस्मे = दिवोःऽस्मे।

३ क्षेप्र स्वरित, नि। अन्यम् = न्याश्न्यम्

प्रश्लिष्ट स्वरित, अभि। इदम् = अभीश्दम्।

ये समस्त उदाहरण उदात्त परे रहने पर होने वाले कम्प के हैं। स्वरित परे रहने कम्प के उदाहरण के रूप में, यः। अहयः = योऽ्हयः को उद्धृत किया जा सकता है।

14. वैदिक स्वर प्रक्रिया

सभी वेदों में स्वर प्रक्रिया एक ही प्रकार की है केवल लिपि चिह्न का केवल अन्तर है। डा. नरेश कुमार धीमान

सामान्य वैदिक स्वर प्रक्रिया के अनुसार प्रायः प्रत्येक पद में एक उदात्त स्वर होता। है अनुदात्तं पदमेकवर्ज्यम्। किन्तु इसके दो अपवाद पाये जाते हैं, जैसे कुछ पदों में दो उदात्त अक्षर भी पाये जाते हैं जबकि कुछ पद ऐसे भी होते हैं, जिनमें एक भी उदात्त नहीं होता है। सामान्य रूप से एक उदात्त वाले पदों में उदात्त सम्बन्धी नियमों को इस प्रकार देखा जा सकता है

(१) (क्रिया में साधारण) 'तवै' से बने शब्दों में एतवै में 'ए' और 'वै' दोनों पर उदात्त है।

(२) वे समास से बने शब्द जिनके दोनों पद द्विवचनान्त हों 'मित्रा वरुणा' (त्रा और व पर) बृहस्पति में (बृ और 'प' पर)।

जिन शब्दों पर उदात्त कभी नहीं होता है, वे हैं।

(१) एन, त्व, सम, मा, त्वा, मे, ते, नौ, वाम्, नः वः, ईम् सीम्।

(२) अव्यय च, उ, वा, इव, घ, ह, चित्, भल, समहः स्म, स्विद्।

कुछ शब्द वाक्य या पाद में स्थिति के अनुसार उदात्तरहित होते हैं।

(१) सम्बोधन शब्द. जब पाद के प्रारम्भ में न हो।

(२) मुख्य वाक्य की क्रिया जब वाक्य या पाद के प्रारम्भ में न हो।

(३) अस्य जब वाक्य या पद के प्रारम्भ में न हो और जोर न देता हो।

(४) यथा जब इव के अर्थ में पाद के अन्त में आवे।

संज्ञा शब्दों में उदात्त

(१) असन्त संज्ञा शब्द में नपुंसकलिंग होने पर मूलशब्द पर और पल्लिग होने पर 'प्रत्यय' पर उदात्त होता है। जैसे अपः (अ पर उदात्त है) कार्य। अपः (प पर) क्रियाशील।

(२) ईष्ठ प्रत्ययान्त में मूलशब्द पर उदात्त होता है। जैसे यजिष्ठा में य पर। जब पहले कोई उपसर्ग आवे तो उपसर्ग पर उदात्त होता है जैसे आगमिष्ठ में आ पर।

(३) ईयास् प्रत्ययान्त में मूलशब्द पर जैसे जवीयांस् में ज पर। उपसर्ग लगने पर उपसर्ग पर उदात्त होता है, जैसे प्रतिच्यवीयांस में प्र पर।

(४) 'मनन्त' में नपुंसकलिंग में मूलशब्द पर जैसे कर्मन् में 'क' पर तथा पुल्लिङ्ग में मन् पर (धर्मन् में 'म' पर) उदात्त होता है।

(५) इनन्त में इन् पर उदात्त होता है जैसे अश्विन में 'वि' पर।

(६) तमान्त में मूलशब्द पर (अपवाद, पुरुतम, उत्तम, शश्वतम) पर संख्यावाची शब्द के साथ तम लगने पर तम के म पर उदात्त होता है। शततम। .

(७) 'मान्त' शब्दों में म पर उदात्त होता है। जैसे अष्टम।

समासिक पदों में उदात्त

(१) जिसमें एक ही शब्द की आवृत्ति हो उसमें पहले पद पर उदात्त होता है जैसे अहरहः, द्यविद्यवि।

(२) बहुव्रीहि में प्रथम पद पर उदात्त (बहुब्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्) होता है जैसे धृतव्रताय।

(३) कर्मधारय में उत्तर पद पर, (प्रथमजा) किन्तु जब अन्त में त प्रत्यय से बना पद हो या 'ति' से समाप्त होने वाला शब्द हों तो पहले पद पर उदात्त होगा जैसे दुर्हितः, सुधस्तुति।

(४) सामान्य तत्पुरुष में अन्तिम पद पर उदात्त होता है जैसे–गोत्रभिद्।

(५) द्वन्द्व समास के उत्तरपद पर उदात्त होता है अहोरात्राणि।

वाक्य में उदात्त

(१) जब सम्बोधन शब्द वाक्य या पाद के आरम्भ में हो तो उदात्त पहले पर होता है। अन्यथा इस पर उदात्त नहीं होता।

(२) मुख्य क्रिया के अतिरिक्त अन्य क्रियाओं पर उदात्त होता है।

(३) यदि मुख्य क्रिया वाक्य या पाद के प्रारम्भ में आवे तो उस पर उदात्त होता है।

(४) सम्बोधन के तुरन्त बाद क्रिया आवे तो उस पर भी उदात्त होता है। अग्ने जुषस्व।

(५) जब क्रिया बलवती हो तो भी उस पर उदात्त होता है भले वह पाद के प्रारम्भ में न हो। प्रायः बलवती क्रिया से पर इत् या चन् निपात का प्रयोग होता है जैसे चकृताद् इत्।

(६) च, चेत्, नेत्, हि, कु, वित् निपातों से युक्त पादों की क्रिया से उदात्त होता है त्वं हि बलदा असि।

(७) यत् या यत् के किसी रूप से प्रारम्भ होने वाले वाक्य या पाद की क्रिया में उदात्त होता है जैसे–य ईङ्खयन्ति।

उपसर्गों में उदात्त

(१) मुख्य वाक्य में उपसर्ग पर उदात्त होता है।

(२) दो उपसर्ग हों तो दोनों स्वतन्त्र और उदात्तयुक्त होते हैं जैसे उप प्रयाहि।

(३) आ के पहले कोई उपसर्ग हो तो 'आ' उदात्त होगा समाकृणोषि।

(४) उपवाक्यों में उपसर्ग क्रिया के साथ प्रायः जुड़ा रहता है और उदात्तरहित होता है।

पद में दो उदात्त

(१) जिन तत्पुरुष समासों का उत्तरपद पति शब्द होता है उनमें दो उदात्त होते हैं जैसे बृहस्पति।

(२) अलुक् तत्पुरुष में भी दो उदात्त होते हैं जैसे–अपां नपात् या शुनः शेप।

(३) देवताद्वन्द्व समास में दो उदात्त होते हैं जैसे मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी।

(४) तवै से बने शब्दों में दो उदात्त होते हैं जैसे एतवै, अन्वेतवे।

(५) असे आदि तुमुन् प्रत्ययार्थ प्रयुक्त चतुर्थी विभक्ति के शब्दों में भी दो उदात्त होते हैं।

सर्वानुदात्त या उदात्त रहित पद

(१) यद्वृत्त से रहित पाद या वाक्य के मध्य की क्रिया (सम्बोधन से परे न रहने पर तथा बलवती न होने पर) प्रायः उदात्त रहित अर्थात् सर्वानुदात्त होती है।

(२) पाद या वाक्य के प्रारम्भ में आने वाले सम्बोधन शब्दों के अतिरिक्त अन्यत्र। प्रयुक्त सम्बोधन सर्वानुदात्त होता है।

(३) अस्य और यथा पद भी पाद के प्रारम्भ में न रहने पर सर्वानुदात्त होते हैं।

(४) सर्वनाम शब्दों के वैकल्पिक रूप तथा एन् सम्, वामः आदि तथा समस्त अव्यय। अनुदात्त होते हैं।

उदात्त

अनुदात्त व स्वरित व जात्य स्वर सभी उदात्त की रक्षा करते हुए दृष्टिपात आते हैं।

उदात्त का चिह्न परिवर्तित नही होता है।

तमिलनाडु में गायन् की पद्धति भिन्न है। बैंगलोर में गायन की पद्धति भिन्न है। केरल में गायन की पद्धति भिन्न है। काशी में गायन की पद्धति भिन्न है।

जात्यस्वर अपरिवर्तनीय होता है उसमें परिवर्तन नही होता है।

गात्रवीणा-हाथ की क्रिया

यह बात नारदीय शिक्षा में भी आई है। उस पर लिखते समय हम इस पर विचार करेंगे। इसमें स्वरोच्चार के साथ हस्त के प्रयोग पर पर्याप्त बल दिया गया है यथा वाणी तथा पाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत्। यत्रैव तु स्थिता वाणी पाणिस्तत्रैव धार्यते ॥ स्वरश्चैव तु हस्तश्च द्वावेतौ युगपद् भवेत्। हस्ताद् भ्रष्टः स्वराद् भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते ॥ अर्थात् जैसा स्वर का उच्चार हो , वैसे ही हाथ की भी क्रिया होनी चाहिए। केवल स्वर का उच्चार वर्जित है। स्वर और हाथ दोनों एक साथ चलना चाहिए। जो हाथ की क्रिया में गलती करता है, वह स्वर में भी ग़लती करता है, और वेद के फल को प्राप्त नहीं कर सकता। वेद के उदात्त , अनुदात्त और स्वरित सहित सस्वर पाठ में हस्तचालन होता है और सामगान में भी हाथ की रेखाओं से काम लिया जाता है। इस कार्य के लिए हाथ को गात्रवीणा कहते हैं। पीछे सामगान के वर्णन में हम यह दिखला चुके हैं कि उँगलियों की रेखाओं पर साम के स्वर किस प्रकार दिखलाये जाते हैं।

माण्डूकी शिक्षा में जो गात्रवीणा का वर्णन है, वह अशुद्ध है। सम्भवतः यह पाठ भ्रष्ट है। श्री भगवद्दत द्वारा प्रकाशित लाहौर संस्करण में उसका वर्णन इस प्रकार बाह्यांगुष्ठं तु कुष्टं स्यादंगुले मध्यमः स्वरः। प्रादेशिन्यां तु गान्धारो मध्यमायां तु पंचमः ॥१.१

अनामिकायां तु षड्जस्तु कनिष्ठायां तु धैवतः। तस्याधस्तात्तु योऽन्यः स्यानिषाद इति तं विदुः ॥२.३

अंगूठे के बाहर कुष्ट स्वर होता है। अँगूठे में मध्यम स्वर होता है। अंगूठे के बाद वाली उँगली पर गान्धार स्वर होता है , बीच वाली अँगुली पर पंचम स्वर होता है। अनामिका पर षड्ज स्वर होता है , कनिष्ठ अँगुली पर धैवत स्वर व्यक्त किया जाता है और उसके नीचे निषाद स्वर व्यक्त किया जाता है।

यह नारदीयशिक्षा के वर्णन से मिलता है। इसमें भी नारदीयशिक्षा के समान धैवत और निषाद स्वर का विपर्यय है। इस विपर्यय का हम पीछे सामगान के साथ विवेचन कर चुके

हैं। ऊपर जो माण्डूकी शिक्षा के अनुसार गात्रवीणा का वर्णन है. वैदिक – काल १०३ वह भी अवरोही क्रम से है। अत : गान्धार के बाद बीच वाली (मध्यमा) अँगुली पर ऋषभ का निर्देश करना चाहिए, न कि पंचम का। यह पाठ की अशुद्धि है।

माण्डूकी शिक्षा के अतिरिक्त और कई शिक्षा – ग्रन्थ हैं , उनमें संगीत का विषय नहीं के बराबर है। संगीत – सम्बन्धी विषयों का सबसे अधिक विवेचन नारदीय शिक्षा में हुआ है।

नारदीय शिक्षा में स्वर

स्वरों की उत्पत्ति का स्थान इस प्रकार बतलाया है।

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्ज ऋषभः शिरसस्तथा। नासिकायास्तु गान्धार उरसो मध्यमस्तथा ॥११

उर : शिरोभ्यां कण्ठाच्च पंचमः स्वर उच्यते। धैवतश्च ललाटाद्वै निषादः सर्वरूपवान् ॥१२

नारदीय शिक्षा में भी इसी प्रकार स्वरों की उत्पत्ति का स्थान बतलाया गया है। इस पर हम वहीं विचार करेंगे। इसमें स्वरों का वर्ण भी दिया है। पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिंजरः। कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः॥ पंचमस्तु भवेत्कृष्णः पीतवर्णस्तु धैवतः। निषादः सर्ववर्णाभः इत्येते स्वरवर्णकाः॥

15. सप्तदिवसीय स्वर संधान सत्र-15 08 2023

वैदिक स्वर चिह्न व्यञ्जन पर नही स्वर पर होता है।

सभी वेदमन्त्र संहिताओं में चिन्ह का आकार भिन्न हो सकता है लेकिन उनका स्वरांकन प्रणाली एक जैसी ही है। इसमें कोई भेद नही है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक **स्वरित** चिह्न को छोड़ कर सभी स्वरांकन एक ही जैसा होता है। कहीं पर किसी प्रकार का भेद नही है।

यजुर्वेद में **स्वरित** के अनेक प्रकार हैं।

अथर्ववेद में **स्वरित** का एक ही प्रकार है।

वेदमन्त्र में पांच स्वर होते हैं। उनका क्रम निम्न है।

अनुदात्त (अ॒)

निघात (अ॒)

उदात्त (अ)

स्वरित (अ॑)

प्रचय (कोई चिह्न नही)

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः

जिस पर कोई पहचान चिह्न न लगा हुआ हो, उसे अनङ्कित कहते हैं।

अनङ्कित **उदात्त** और **प्रचय** की पहचान।

स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्। अष्टाध्यायी १.२.३९

अनङ्कित **प्रचय** की पहचान, संहिता में **स्वरित** से आगे जितने भी शब्द होंगे, वह **अनुदात्त**, **प्रचय** में परिवर्तित हो जाता है।

स्वरितात् (पञ्चमी-एकवचनम्), संहितायाम् (सप्तमी-एकवचनम्), अनुदात्तानाम् (षष्ठी-बहुवचनम्) अनुवृत्तिः एकश्रुति १.२.३३

उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः। अष्टाध्यायी १.२.४०

उदात्त-स्वरित-परस्य (षष्ठी-एकवचनम्), सन्नतरः (प्रथमा-एकवचनम्) अनुवृत्तिः अनुदात्तानाम् १.२.३९

उदात्त या **स्वरित** दोनो से पहिले यदि कोई **अनुदात्त** है तो वह सन्नतर कहलाएगा, जिसे हमने **निघात** (॒) नाम दिया है।

अब जो शेष बचे वह **उदात्त** कहलाएगें।

अनुदात्त सदैव मन्त्र या पङ्क्ति के प्रारम्भ में या पद पाठ में किसी पद के आरम्भ में आने वाले सभी अनुदात्तों में अन्तिम **अनुदात्त** को छोड़ कर शेष **अनुदात्त**, **अनुदात्त** ही होते हैं।

व॒स॒न्तो

यजुर्वेद में जहां पर परसवर्ण (ङ,ण,न,ञ,म इत्यादि) अनुस्वार (ं), सानुनासिक (ँ) कहते हैं वहां पर दीर्घ पाठ होता है उसमें जैसे द, व से पहले व्व द्द लिख देते हैं जिससे यह दीर्घ पाठ में परिवर्तित हो जाता है।

गीता प्रेस की पुस्तक में **रामकेलिए** इकट्ठा इसीलिए लिपिबद्ध होता है क्योंकि संस्कृत में **रामायः** का अर्थ रामकेलिए होता है।

जब जब **स्वरित** के चिह्न से पहले परम्परागत पाठ में कोई अनङ्कित अक्षर होगा। जब जब वह सामान्य **स्वरित** होगा। जब जब खड़ी रेखा से पहले कोई **अनुदात्त** की पड़ी रेखा लगी हुई होगी तब तब वह स्वतन्त्र **स्वरित** का चिह्न होगा।

जिस पद में कोई स्वतन्त्र **स्वरित** या **उदात्त** नही है उसे सभी स्वरों को **अनुदात्त** कर देते हैं।

वास्तव में उदात्त व **अनुदात्त**_ दो ही स्वर होते हैं जहां **उदात्त** व **अनुदात्त** मिलते हैं वहां **स्वरित** हो जाता है।

अनुदात्त का परिवर्तित रुप **निघात** ॒ है।

अनुदात्त का परिवर्तित रुप **स्वरित**॑ है।

पाणिनीय मत उच्चैः उदात्तः, नीचैः अनुदात्तः, समाहारः स्वरितः। १.२.३१

स्वरित से परे जो अनुदात्त होते हैं वह प्रचय हो जाते हैं।

स्थित+उपस्थित=स्थितोपस्थित (इति करण)

स्थित का अर्थ होता है मूल पद, लेकिन जब मूल पद का इतिकरण कर देते हैं तो वह स्थितोपस्थित कहलाता है। **पुरोहितम्+इति** सन्धि करने से **पुरोहितमिति** बन जाता है तो यह उपस्थित कहलाता है। और यदि मूल पद के उपरान्त हम उसकी पुनरावृत्ति कर दें तो वह **पुरोहितमिति पुरोहितम् स्थितोपस्थित** बनेगा। **स्थितोपस्थित** का प्रयोग यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा में होता है ऋग्वेद में इसका प्रयोग नही होता हे। लेकिन कुछ पद है जहां होता है। जो रिफित संज्ञक हैं उनमें होता है।

सामान्य पद में एक ही उदात्त या एक ही स्वरित होता है।

अनुदात्तं पदमेकवर्जम्॥ ६.१.१५८

देवस्य, (उदात्त)

दे॒वस्य॒, (अनुदात्त)

दे॒वस्य॒, (निघात)

दे॒वस्य॑, (स्वरित)

देवस्य। (प्रचय)

उदात्त पद का अर्थ प्रधान अर्थ होत है।

पद पाठ वेद का संक्षिप्त भाष्य है।

जब हम पदच्छेद करते हैं तो कुछ पदों को रेखांकित कर लेना चाहिए। जिनमें ही केवल वैदिक स्वर का परिवर्तन होता है।

इन पदो को रेखांकित करें।

समस्तपद।

सांहितिक दीर्घ पद।

सत्व, षत्व, णत्व।

रिफित पद।

प्रगृह्य पद संज्ञक। इसके छह सूत्र हैं। जो त्रिवचनांत पद हैं जो दीर्घ ई या ऐ से समाप्त होते हैं।

वे प्रगृह्य संज्ञक होते हैं। इनमें स्त्रीलिंग भी होते हैं।

आज तक किसी विश्वविद्यालय में किसी प्रश्नपत्र में वैदिक स्वर चिह्न को सम्मलित नही किया गया है क्योंकि वह बहुत कठिन है।

16. सामवेद एक परिचय-०१

'सामन्' शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्ति अर्थक 'सन्' धातु से 'मन् प्रत्यय लगाने पर होती है। साम का शाब्दिक अर्थ है वह गीत जिसके द्वारा परमात्मा को पाया जाता है। शबर स्वामी के अनुसार 'विशिष्ट काचित् साम्यो गीतिः सामेत्युच्यते'। अर्थात् मन्त्रों को जब विशिष्ट गान पद्धति से गाया जाता है, तब उसे 'सामन्' कहते हैं। सामवेद का 'ऋत्विक उद्गाता है।

सामवेद का देवता आदित्य और आचार्य जैमिनि है। पतञ्जलि जी ने सामवेद की 1000 शाखाएँ बताई।

शौनक ने चरणव्यूह में 13 शाखाएँ स्वीकारी हैं। सामवेद की शाखाएः वर्तमान में 3 शाखाएँ उपलब्ध हैं।

1. कौथुमीय, 2. राणायनीय, 3. जैमिनीय

क्रम से सामवेद की शाखाओं के बारे में समझते हैं

1. कौथुमीय शाखा इस शाखा में 1875 मन्त्र हैं। यह सबसे प्रसिद्ध शाखा है। इस शाखा का सबसे अधिक प्रचलन है।

2. राणायनीय शाखा इस शाखा में 1810 मन्त्र हैं। यह महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है।

3. जैमिनीय शाखा इस शाखा में 1687 मन्त्र हैं। इसका प्रचार कर्नाटक में है।

सामवेद की कौथुमीय शाखा का विभाजनः सामवेद की कौथुमीय शाखा के 2 भाग हैं।

1. पूर्वार्चिक 2. उत्तरार्चिक।

सामवेद की कौथुमीय शाखा में कुल मन्त्र संख्या 1875 है। पूर्वार्चिक में 650 मन्त्र और उत्तरार्चिक में 1225 मन्त्र हैं। सामवेद की कौथुमीय शाखा में ऋग्वेद से 1554 मन्त्र लिए गए हैं।

सामवेद में मन्त्रों की संख्या

सामवेद में कई मन्त्र पुनरुक्त हैं।, पूर्वार्चिक के 267 मन्त्र उत्तरार्चिक में पुनरुक्त हैं। सामवेद के स्वयं के 104 मन्त्रों में भी 5 मन्त्र पुनरुक्त हैं। इस प्रकार देखें तो ऋग्वेद से लिए गए मन्त्र 1504, सामवेद के स्वयं के मन्त्र 99, ऋग्वेद के पुनरुक्त मन्त्र 267 और सामवेद के पुनरुक्त मन्त्र 5 हैं। यदि इन सबका योग करें तो 1504+99+267+5 = 1875 हो जाता है।

सामवेद की कौथुमीय शाखा को काण्डों, पर्वों, प्रपाठक, अध्यायों व अर्धों व दशति में विभक्त करते हैं।

सामवेद की कौथुमीय शाखा पूर्वार्चिक में 4 काण्ड या पर्व, 6 प्रपाठक या अध्याय और 650 मन्त्र हैं। प्रत्येक प्रपाठक में दो अर्ध या खंड हैं। प्रत्येक खंड में 1 दशति और प्रत्येक दशति में कुछ मन्त्र हैं। दशति शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें मन्त्रो की संख्या 10 रही होगी, किन्तु आज किसी खण्ड में 10 से कम मन्त्र हैं और किसी में ज्यादा। जिस काण्ड या पर्व में जिस देवता का वर्णन है, उसी देवता के नाम पर काण्ड या पर्व का नाम भी है। प्रथम पर्व (काण्ड) का नाम आग्नेय पर्व (काण्ड) है। इसमें अग्नि से सम्बन्धित मन्त्र हैं। इसके अन्तर्गत प्रथम प्रपाठक आता है। इसमें कुल 114 मन्त्र हैं। द्वितीय पर्व (काण्ड) का नाम ऐन्द्र पर्व (काण्ड) है। इसमें इंद्र की स्तुतियाँ की गई हैं। इसके अंतर्गत द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक आता है। इसमें 352 मन्त्र हैं। तृतीय पर्व (काण्ड) का नाम पावमान पर्व (काण्ड) है। इसमें सोम की स्तुति की गई है। इसके अंतर्गत पंचम प्रपाठक आता। इसमें 119 मन्त्र हैं। चतुर्थ पर्व (काण्ड) का नाम अरण्य पर्व (काण्ड) है। इसमें अरण्यगान के ही मन्त्र हैं। इसके देवता इंद्र, अग्नि और सोम हैं। इसमें 55 मन्त्र हैं। इनके अतिरिक्त महानाम्नी आर्चिक भी है। इसके देवता इंद्र हैं और इसमें कुल 10 मन्त्र हैं।

सामवेद की कौथुमीय शाखा उत्तरार्चिक

उत्तरार्चिक उत्तरार्चिक में कुल 9 प्रपाठक, 21 अध्याय, 400 सूक्त और 1225 मन्त्र हैं। प्रथम 5 प्रपाठकों में 2 2 अध्याय हैं, जबकि अन्तिम 4 प्रपाठकों में 3 3 अध्याय हैं। सामवेद में मन्त्रों के समूह की संज्ञा को 'आर्चिक' कहते हैं।

सामवेद का वाङ्ग्मय

ब्राह्मण प्रौढ़, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद्, संहितोपनिषद्, वंश, जैमिनीय।

आरण्यक तलवल्कार और छान्दोग्य।

उपनिषद् छान्दोग्योपनिषद् और केनोपनिषद्।

सामगान के प्रकार (स्थान की दृष्टि से)

सामगान 4 प्रकार के हैं

1. ग्रामगान यह गाँव या सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता था।
2. आरण्यगान वन और पवित्र स्थानों पर गाया जाता था।
3. उहगान उह का अर्थ है 'विचारपूर्वक विन्यास'। यह सोमयाग या धार्मिक स्थलों पर गाया जाता था।
4. उह्यगान रहस्यात्मक होने के कारण इसे वन और पवित्र स्थानों पर गाया जाता था।

सामवेद के अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु।

1. सामवेद का उपवेद गान्धर्व वेद है।
2. सामवेद के गायन करने वाले को सामग कहते हैं।
3. सामवेद में कुल 144000 अक्षर हैं।
5. सामवेद में मन्त्रों के ऊपर **उदात्त** स्वर के लिए 1, **स्वरित** स्वर के लिए 2 और **अनुदात्त** स्वर के लिए 3 लिखा जाता है।
6. सामवेद में 7 स्वर, 3 ग्राम, 21 मूर्छनाएँ और 49 तानों का वर्णन मिलता है।
7. सात स्वर इस क्रम में हैं मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षडज, निषाद, धैवत, पंचम।
8. 3 ग्राम निम्न हैं 1. मन्द, 2. मध्य 3. तीव्र।
9. 7 स्वर* 3 ग्राम मिलकर 21 मूर्छनाएँ बनती हैं।
10. 7 स्वर × 7 स्वर मिलकर 49 तानें बनती हैं।
11. सामवेद में सर्वाधिक 'गायत्री' व 'प्रगाध' छन्दों का प्रयोग हुआ है।
13. ग्रामगान और अरण्यगान पूर्वार्चिक में जबकि उहगान और उह्यगान का प्रयोग उत्तरार्चिक में होता है।

सामवेद का प्रथम मन्त्र निम्न है।

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥

सामवेद स्वर परिचय

सामगान की अपनी विशिष्ट स्वरलिपि है। लोगों में एक भ्रांत धारणा है कि भारतीय संगीत में स्वरलिपि नहीं थी और यह यूरोपीय संगीत का परिदान है। सभी वेदों के सस्वर पाठ के लिए **उदात्त**, **अनुदात्त** और **स्वरित** के विशिष्ट चिह्न हैं किंतु सामवेद के गान के लिए ऋषियों ने एक पूरी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबसे पुरानी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबमें पुरानी स्वरलिपि है। सुमेर के गान की भी कुछ स्वरलिपि यत्रतत्र खुदी हुई मिलती है। किंतु उसका कोई साहित्य नहीं मिलता। अतः उसके विषय में विशिष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु साम के सारे मंत्र स्वरलिपि में लिखे मिलते हैं, इसलिए वे आज भी उसी रूप में गाए जा सकते हैं।

आजकल जितने भी सामगान के प्रकाशित ग्रंथ मिलते हैं उनकी स्वरलिपि संख्यात्मक है। किसी साम के पहले अक्षर पर लिखी हुई 1 से 5 के भीतर की जो पहली संख्या होती है वह उस साम के आरंभक स्वर की सूचक होती है। 6 और 7 की संख्या आरम्भ में कभी नहीं दी होती। इसलिए इनके स्वर आरंभक स्वर नहीं होते। हम यह देख चुके हैं कि

सामग्राम अवरोही क्रम का था। अतः उसके स्वरों की सूचक संख्याएँ अवरोही क्रम में ही लेनी चाहिए।

प्रायः 1 से 5 के अर्थात् मध्यम से निषाद के भीतर का कोई न कोई आरम्भक स्वर अर्थात् षड्ज स्वर होता है। संख्या के पास का "र" अक्षर दीर्घत्व का द्योतक है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित "आज्यदोहम्" साम के स्वर इस प्रकार होंगे।

2र 2र 2र 2र 3 4र 5, हाउ हाउ हाउ। आ ज्य दो हम्। सऽस सऽस सऽस। सऽ नि ध ऽप, मू2र र्धानं1र दाइ। वा2ऽ 3 अ1 र। सऽ रे ऽ रे रे रे स ऽ नि रे रे, 2 र 3 4 र 5 2 र 3 4 र 5, आ ज्य दो हम्। आ ज्य दो हम्, सऽ नि ध ऽ प स ऽ नि ध ऽ प ति2 पृ3 थि4 व्या5। स नि ध प।

इस साम में रे, स, नि, ध, प-ये पाँच स्वर लगे हैं। संख्या के अनुसार भिन्न भिन्न सामों के आरंभक स्वर बदल जाते हैं। आरंभक स्वरों के बदल जाने से भिन्न भिन्न मूर्छनाएँ बनती हैं जो जाति और राग की जननी हैं। सामवेद के काव्य में स्वर, ग्राम और मूर्छना का विकास हो चुका था। सामवेद में ताल तो नहीं था, किंतु लय थी। स्वर, ग्राम, लय और मूर्छना सारे संगीत के आधार हैं। इसलिए सामवेद को संगीत का आधार मानते हैं।

प्रातिशाख्य और शिखा काल में स्वरों के नाम षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हो गए। ग्राम का क्रम आराही हो गया स्वर के तीनों स्थान मंद्र, मध्य और उत्तम (जिनका पीछे नाम पड़ा मंद्र, मध्य और तार) निर्धारित हो गए। ऋक्प्रातिशाख्य में उपर्युक्त तीनों स्थानों और सातों स्वरों के नाम मिलते हैं।

ऋक्-साम के सम्बन्ध की मीमांसा

ऋग्वेद तथा सामवेद के परस्पर सम्बन्ध की मीमांसा यहाँ अपेक्षित है। वैदिक विद्वानों की यह धारणा है कि सामवेद उपलब्ध ऋचायें ऋग्वेद से ही गान के निमित्त गृहीत की गई है, वे कोई स्वतन्त्र ऋचायें नहीं है। यह बद्धमूल धारणा नितान्त भ्रान्त है। इसके अनेक कारण है-

सामवेद की ऋचाओं में ऋग्वेद की ऋचाओं से अधिकतर आंशिक साम्य है। ऋग्वेद का 'अग्नेयुक्ष्वा हि ये तवाऽश्वासो देव साधवः। अरं बहन्ति मन्यवे (6.16.43) सामवेद में 'अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासों देव साधवः। हरं वहन्त्याशवः' रूप में पठित है। ऋग्वेद का मन्त्रांश 'अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी' (7.81.1) सामवेद में 'अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष् कृणोति सूनरी' रूप धारण करता है। इस आंशिक साम्य के तथा मन्त्र में पादव्यत्यय के अनेक उदाहरण सामवेद में मिलते है। यदि ये ऋचायें ऋग्वेद से ही ली गई होती, तो वे उसी रूप में और उसी क्रम में गृहीत होतीं, परन्तु वस्तुस्थिति सभी नहीं है।

यदि ये ऋचायें गायन के लिए ही सामवेद में संगृहीत है, तो कवेल उतने ही मन्त्रों का ऋग्वेद से सकलन करना चाहिए था, जितने मन्त्र गान या साम के लिए अपेक्षित होते। इसके विपरीत हम देखते हैं कि सामसंहिता में लगभग 450 ऐसे मन्त्र है, जिन पर गान नहीं है। ऐसे गानानपेक्षित मन्त्रों का सकलन सामसंहिता में क्यों किया गया है?

सामसंहिता के मन्त्र ऋग्वेद से ही लिए गये होते, तो उनका रूप ही नहीं, प्रत्युत उनका स्वरनिर्देश भी, तद्वत् होता। ऋग्वेद के मन्त्रों में उदात अनुदात्त तथा स्वरित स्वर पाये जाते हैं, जब सामवेद निर्देश 1, 2, तथा 3 अंकों के द्वारा किया गया है जो 'नारदीशिक्षा' के अनुसार क्रमशः मध्यम, गान्धार और ऋषभ स्वर हैं। ये स्वर अंगुष्ठ, तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों के मध्यम पर्व पर अंगुष्ठ का स्पर्श करते हुए दिखलायें जाते हैं। साममन्त्रों का उच्चारण ऋक्मन्त्रों के उच्चारण से नितान्त भिन्न होता है।

यदि सामवेद ऋग्वेद के बाद की रचना होती, (जैसा आधुनिक विद्वान् मानते है), तो ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर साम का उल्लेख कैसे मिलता? अंगिरसा सामभिः स्तूयमानाः (ऋग्वेद 1.107.2), उद्गातेव शकुने साम गायति (2.43.2), इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् (8.98.1) आदि मन्त्रों में सामान्य साम का भी उल्लेख नहीं है, प्रत्युत 'बृहत्साम' जैसे विशिष्ट साम का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण (2.23) का तो स्पष्ट कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में ऋक् और साम दोनों का अस्तित्व था (ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्ताम्)। इतना ही नहीं, यज्ञ की सम्पन्नता के लिए होता, अध्वर्यु तथा ब्रह्म नामक ऋत्विजों के साथ 'उद्गाता' की भी सत्ता सर्वथा मान्य है। इन चारों ऋत्विजों के उपस्थित रहने पर ही यज्ञ की समाप्ति सिद्ध होती है और 'उद्गाता' का कार्य साम का गायन ही तो है? तब साम की अर्वाचीनता क्यों नहीं विश्वसनीय है। मनु ने स्पष्ट ही लिखा है कि परमेश्वर ने यज्ञसिद्धि के लिए अग्नि, वायु तथा सूर्य से क्रमशः सनातन ऋक् यजुः तथा सामरूप वेदों का दोहन किया (मनुस्मृति 1.23) 'त्रयं ब्रह्म सनातनम्' में वेदों के लिए प्रयुक्त 'सनातन' विशेषण वेदों की नित्यता तथा अनादिता दिखला रहा है। 'दोहन' से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

साम का नामकरण विशिष्ट ऋषियों के नाम किया गया मिलता है, तो क्या वे ऋषि इन सामों के कर्ता नहीं है? इसका उत्तर है कि जिस साम से सर्वप्रथम जिस ऋक् को इष्ट प्राप्ति हुई, उस साम का वह ऋषि कहलाता है। ताण्डय ब्राह्मण में इस तथ्य के द्योतक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध है। ''वृषा शोणों 'अभिकनिक्रदत्' (ऋक् 9.97.13) ऋचा पर साम का नाम 'वसिष्ट' होने का यही कारण है कि बीडु के पुत्र वसिष्ठ ने इस साम से स्तुति करके अनायास स्वर्ग प्राप्त कर लिया (वसिष्ठं भवति, वसिष्टों वा एतेन वैडवः स्तुत्वा ञ्जसा स्वर्ग लोकमपश्यत् ताण्डय ब्राव्म् 11.8.13) 'तं वो दस्ममृतीषहं (9.88.1) मन्त्र पर 'नौधस साम' के नामकरण का ऐसा ही कारण अन्यत्र कथित है (ताण्डत्त 7.10.10)। फलतः इष्टसिद्धिनिमित्तक होने से ही सामों का ऋषि परक नाम है, उनकी रचना के हेतु नहीं।

इन प्रमाणों पर ध्यान देने से सिद्ध होता है कि सामसंहिता के मन्त्र ऋग्वेद से उधार लिये गये नहीं हैं, प्रत्युत उससे स्वतन्त्र हैं और वे उतने ही प्राचीन हैं जितने ऋग्वेद के मन्त्र। अतः साम संहिता की स्वतन्त्र सत्ता है, वह ऋक् संहिता पर आधृत नहीं है।

सामवेद में छन्द

सामवेद के अधिकांश मन्त्र दो छन्दो में हैं गायत्री तथा प्रगाथ (गायत्री और जगती का सम्मिश्रण)। निर्विवाद ये गीत और मन्त्र इन छन्दों में गायन की दृष्टि से ही लिखे थे। गायत्री तथा प्रगाथ दोनो शब्द गा (गै) धातु से बने हैं, जिसका अर्थ है गाना। यद्यपि एक ऋचा विभिन्न गानों में गाई जा सकती है और एक गानो का विविध ऋचाओं के लिए प्रयोग हो सकता है, फिर भी कुछ ऋचाएं कुछ गानों के लिए योनि हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक १८५ ऋचाओं (योनियों) का संग्रह है।

सामवेद में से आरण्यक गानम्, ग्रामे गानम् (प्रकृति गानम्), उह गानम्, उह्य गानम् (रहस्य गानम्) उपलब्ध है। उह गान की संख्या ९३६ व उह्य गान की संख्या २०५ है। ग्रामे गानम् सामवेद के मन्त्रों की ५८४ ऋचाओं से निर्मित हैं। उह गान सामवेद की ११५९ ऋचाओं से बनाए गए हैं। आरण्यक गानम् साम वेदमन्त्रों की ६५ ऋचाओं से निर्मित हैं।

जिनकी संख्या २९४ है। ऋचा योनि (गर्भ) को कहते हैं, जिससे राग का जन्म होता हुआ। सामवेद में कुल गानो की संख्या (९३६+२०५+५८४+२९४=२०१९) है।

जो गान के अन्त में दी..२४.उत्.३.मा.१५.दु. इसमें दी का अर्थ दीर्घम्, उत्. का अर्थ उद्धम् मा. का अर्थ मात्रा है, अभी चौथे अक्षर का अर्थ स्पष्ट नही हुआ है। पांचवा अक्षर वेदगान की गणना का द्यौतक है। श्री लगा है उसका अर्थ क्या होता है। यह भी जानना है।

उह्य गान (रहस्य गान) में, पर्व नाम, दशति संख्या, गान संख्या, गान नामानि, गानानि, योनिगानानि, ऋषि, छन्दः,और देवता की अनुकृति शङ्कर अद्वैत शोधकेन्द्रम्,श्री जगदगुरु शङ्कराचार्यमहासंस्थानम्, दक्षिणाम्नाय श्री शारदापीठम् शृङ्गगिरिः ५७७१३८। जिसके प्रथम संस्करण सम्पादक, वेदब्रह्मश्री रामनाथदीक्षीतः वाराणसी, व द्वितीय संस्करण सम्पादकः वेदब्रह्मश्री राममूर्तिश्रौती शृङ्गगिरिः को प्रमाणित मान करके लिए गए हैं।

ईश्वर तक पहुंचने के लिए आत्म भावना का योग चाहिए। भाषा को भावपूर्ण बनाने के प्रयास में ही मन्त्र बने। गद्य की अपेक्षा पद्य में भाव संयोग एवं उभार की क्षमता अधिक पाई गई। पद्य को भी जब गान विद्या से जोड़ा गया तो भावना का योग अधिक पूर्णता से खुला।

सामवेद मूर्धन्यों की अवहेलना के कारण उसकी इतनी बड़ी दुरवस्था आजकल उपस्थित है कि उसके मौलिक सिद्धांतों को समझना एक समस्या हो गई है। साम गान की पद्धति का ज्ञान उसी तरह दुरूह है। एक तो यों ही साम के जानने वाले कम है, उस पर साम गान को ठीक स्वर में गाने वालों की संख्या तो अँगुलियों में गिनने लायक है। यदि गायक के गले में लोच हो और वह उचित मूर्छना, आरोह, अवरोह का विचार कर साम गान करे, तो मन्त्रार्थ न जानने पर भी भावों की दिव्य अनुभूति हुए बिना नहीं रहती। नारद शिक्षा के अनुसार साम के स्वर मंडल इतने हैं **७ स्वर, ३ ग्राम, २१ मुर्छना, ४९ तान**। साम गानों में ये ही सात तक के अंक तत्तत् स्वरों के स्वरूप को सूचित करने के लिए लिखे जाते हैं। सामयोनि मंत्रों के ऊपर दिये गये अंकों की व्यवस्था दूसरे प्रकार की होती है। सामयोनि मंत्रों के सामगानों के रूप में ढालने पर अनेक गायन अनुसार शाब्दिक परिवर्तन किये जाते हैं। इन्हें साम विकार कहते हैं। जिनकी संख्या ६ है।

सामविकार

मन्त्र को गान का रूप देने के लिए उसमें कुछ परिवर्तन किए जाते हैं, उन्हीं परिवर्तनों को साम विकार कहते हैं। ये कुल 6 हैं।

1. विकार 2. विश्लेषण 3. विकर्षण 4. अभ्यास 5. विराम 6. स्तोभ।

क्रम से सामविकारों को समझते हैं।

1. विकार जहाँ शब्द के उच्चारण में परिवर्तन कर दिया जाता है। जैसे अग्नि के स्थान पर ओग्नाइ।

2. विश्लेषण जहाँ एक ही शब्द को पृथक् पृथक् करके बोला जाता है। जैसे 'वीतये' के स्थान पर 'वोयि तोयायि।

3. विकर्षण जहाँ एक स्वर का लम्बे समय के लिए उच्चारण किया जाता है। जैसे 'आयाहि' के स्थान पर आयाही..3..।

4. अभ्यास जहाँ किसी पद का बार बार उच्चारण किया जाता है। जैसे 'तोयायि' को दो बार बोला जाता है। जैसे तोयायि तोयायि।

5. विराम जहाँ सुविधा के लिए बीच में रुका जाता है। जैसे 'हव्यदातये' में द पर रुका जाता है।

6. स्तोभ जहाँ कुछ अतिरिक्त पदों को जोड़ दिया जाता है। जैसे हो, ओ होवा, हाउआ, हावु, रायि आदि।

साम गायन की पद्धति बहुत कठिन है। उसकी ठीक ठीक जानकारी हो सके इसके लिए बहुत सूक्ष्म अध्ययन अपेक्षित है। साधारण ज्ञान के लिए यह जान लेना काफी है कि साम गान के पाँच भाग होते हैं।

सामवेद में सामगान के मन्त्रो के भाग

सामवेद में सामगान के मन्त्रो के 5 भाग हैं।

1. प्रस्ताव 2. उद्गीथ 3. प्रतिहार 4 उपद्रव 5. निधन।

1. प्रस्ताव इसका गान 'प्रस्तोता' नामक ऋत्विक् करता है। यह 'हूँ ओग्नाइ' से प्रारम्भ करता है।

2. उद्गीथ इसे सामवेद का प्रधान ऋत्विक् 'उद्गाता' गाता है। यह 'ॐ' से प्रारम्भ करता है।

3. प्रतिहार इसका गान 'प्रतिहर्ता' नामक ऋत्विक करता है। यह २ मन्त्रो को जोड़ने वाली कड़ी है। अन्त में ॐ' बोला जाता है।

4. उपद्रव इसका गान 'उद्गाता' ही करता है।

5. निधन-जिसमें मंत्र के दो पद्यांश या ओम् रहता है। इनका गायन तीनों ऋत्विज, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता एक साथ मिलकर करते है।

उदाहरण के लिए सामवेद का प्रथम मंत्र लें अग्न आया हि वीतये गृणानो हव्यदातये नि होता सत्सि बर्हिषि॥

सामवेद सामगान में मन्त्र के भाग

इसके ऊपर जिस साम का गायन किया जायेगा, उसके पाँचो अंग इस प्रकार होंगे।

1. हुं ओग्नाइ (प्रस्ताव)
2. ओ३म् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ)
3. नि होता सत्सि बर्हिषि ओ३म् (प्रतिहार)। इसी प्रतिहार के दो भेद होंगे, जो दो प्रकार से गाये जायेंगे।
4. निहोता सत्सि बर्हिषि (उपद्रव)
5. बर्हिर्षि ओ३म् (निधन)

सामगान

आरोह एवं अवरोह से युक्त मंत्रों का गान साम कहलाता है। साम से सम्बद्ध वेद सामवेद कहलाता है। वस्तुत: सामवेद में ऋग्वेद की उन ऋचाओं का संकलन है जो गान के योग्य समझी गयी थीं। ऋचाओं का गान ही सामवेद का मुख्य उद्देश्य माना जाता है। सामवेद मुख्यत: उपासना से सम्बद्ध है, सोमयाग में आवाहन के योग्य देवताओं की स्तुतियाँ इसमें प्राप्त होती है। यज्ञ सम्पादन काल में उद्गाता इन मंत्रों का गान करता था। संपूर्ण सामवेद में सोमरस, सोम देवता, सोमयाग, सोमपान का महत्व अंकित है इसलिए इसे सोम प्रधान वेद भी कहा जाता है। सामगान की पृथक परंपराओं के कारण सामवेद की एक सहस्त्र हजार शाखाओं का उल्लेख महाभाष्य में प्राप्त होता है सहस्त्रवर्त्मा सामवेद:। सम्प्रति सामवेद की तीन शाखायें उपलब्ध हैं कौथुमीय, राणायनीय, जैमिनीय।

सामगान की स्वरलिपि

भारतीय संगीत भी देखें। सामगान की अपनी विशिष्ट स्वरलिपि है। लोगों में एक भ्रांत धारणा है कि भारतीय संगीत में स्वरलिपि नहीं थी और यह यूरोपीय संगीत का परिदान है। सभी वेदों के सस्वर पाठ के लिए उदात्त **अनुदात्त** और **स्वरित** के विशिष्ट चिह्न हैं किंतु सामवेद के गान के लिए ऋषियों ने एक पूरी स्वर लिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबसे पुरानी स्वर लिपि तैयाकर ली थी। संसाभर में यह सबमें पुरानी स्वरलिपि है। सुमेर के गान की भी कुछ स्वरलिपि यत्र तत्र खुदी हुई मिलती है। किंतु उसका कोई साहित्य नहीं मिलता। अत: उसके विषय में विशिष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु साम के सारे मंत्र स्वरलिपि में लिखे मिलते हैं, इसलिए वे आज भी उसी रूप में गाए जा सकते हैं। आजकल जितने भी सामगान के प्रकाशित ग्रंथ मिलते हैं उनकी स्वरलिपि संख्यात्मक है। किसी साम के पहले अक्षर पर लिखी हुई 1 से 5 के भीतर की जो पहली संख्या होती है वह उस साम के आरंभक स्वर की सूचक होती है। 6 और 7 की संख्या आरंभ में कभी नहीं दी होती। इसलिए इनके स्वर आरंभक स्वर नहीं होते। हम यह देख चुके हैं कि सामग्राम अवरोही क्रम का था। अत: उसके स्वरों की सूचक संख्याएँ अवरोही क्रम में ही लेनी चाहिए। प्राय: 1 से 5 के अर्थात् मध्यम से निषाद के भीतर का कोई न कोई आरंभक स्वर अर्थात् षड्ज स्वर होता है। संख्या के पास का "र" अक्षर दीर्घत्व का द्योतक है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित "आज्यदोहम्" साम के स्वर इस प्रकार होंगे: 2र 3 4र 5 हाउ हाउ हाउ। आ ज्य दो हम्। सऽस सऽस। सऽ नि ध ऽप मू 2र धांनं 1र दाइ। वा 2 ऽ 3 अ 1 र। सऽ रे ऽ रे रे रे स ऽ नि रे रे 2 र 3 4 र 5 2 र 3 4 र 5 आ ज्य दो हम्। आ ज्य दो हम् सऽ नि ध ऽ प स ऽ नि ध ऽ प ति 2 पृ 3 थि 4 व्या: 5। स नि ध प इस साम में रे, स, नि, ध, प ये पाँच स्वर लगे हैं। संख्या के अनुसार भिन्न भिन्न सामों के आरंभक स्वर बदल जाते हैं। आरंभक स्वरों के बदल जाने से भिन्न भिन्न मूर्छनाएँ बनती हैं जो जाति और राग की जननी हैं। सामवेद के काव्य में स्वर, ग्राम और मूर्छना का विकास हो चुका था। सामवेद में ताल तो नहीं था, किंतु लय थी। स्वर, ग्राम, लय और मूर्छना सारे संगीत के आधार हैं। इसलिए सामवेद को संगीत का आधार मानते हैं। प्रातिशाख्य और शिखा काल में स्वरों के नाम षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हो गए। ग्राम का क्रम आराही हो गया: स्वर के तीनों स्थान मंद्र, मध्य और उत्तम जिनका पीछे नाम पड़ा मंद्र, मध्य और तार निर्धारित हो गए। ऋक्प्रातिशाख्य में उपर्युक्त तीनों स्थानों और सातों स्वरों के नाम मिलते हैं।

17. वैदिक वाङ्मय सामवेद एक परिचय-०२

वैदिक वाङ्मय में सामवेद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गीता (१०.२२) में श्रीकृष्ण ने स्वयं के लिए सामवेद कहा है-"वेदानां सामवेदोऽस्मि।"

इस वेद का महत्त्व इस बात से अधिक है कि सामवेद को द्यु कहा गया है, जबकि ऋग्वेद को पृथिवी कहा है-"साम वा असौ द्युलोकः, ऋगयम् भूलोकः।" (ताण्ड्य-ब्राह्मण ४.३.५)

सामवेद वेदों का सार है। सारे वेदों का रस या सार सामवेद ही है-"सर्वेषामं वा एष वेदानां रसो यत् साम।" (शतपथ-१२.८.३.२३) (गोपथ-ब्राह्मण २.५.७)

सामवेद के लिए गीतियुक्त होना अनिवार्य है-"गीतिषु सामाख्या।" (पूर्वमीमांसा २.१.३६)

ऋग्वेद और सामवेद का अभिन्न सम्बन्ध हैं।

सामवेद के बिना यज्ञ नहीं होता-"नासामा यज्ञो भवति।" (शतपथ १.४.१.१)

जो पुरुष "साम" को जानता है, वही वेद के रहस्य को जान पाता है-"सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्।" (बृहद्देवता)

"साम" का शाब्दिक अर्थ है-देवों को प्रसन्न करने वाला गान।

सामवेद का प्रकाश आदित्य ऋषि के हृदय में हुआ।

आचार्य सायण के अनुसार ऋग्वेद के गाए जाने वाले मन्त्रों को "साम" कहते हैं-"ऋच्यध्यूढं साम।" अर्थात् ऋचाओं पर ही साम आश्रित है।

सामवेद उपासना का वेद है।

(१.) सामवेद के प्रमुख ऋषि-आदित्य,

सामवेद सूर्य है और सामवेद के मन्त्र सूर्य की किरणें हैं-"(आदित्यस्य) अर्चिः सामानि।" (शतपथ १०.५.१.५)

(२.) सामवेद के गायक ऋत्विज्-उद्गाता,

(३.) सामवेद के देवता-आदित्य।

सामवेद की उत्पत्ति सूर्य से हुई है। यह सूर्य-पुत्र है। इसमें सूर्य की शक्ति है-"सूर्यात् सामवेदः अजायत।" (शतपथ-११.५.८.३)

(४.) ऋषि व्यास ने सामवेद का अध्ययन कराया-जैमिनि को।

जैमिनि ने सामवेद की शिक्षा अपने पुत्र सुमन्तु को, सुमन्तु ने सुन्वान् को और सुन्वान् ने अपने पुत्र सुकर्मा को दी।

सामवेद का विस्तार इसी सुकर्मा ऋषि ने की थी। सुकर्मा के दो शिष्य थे-हिरण्यनाभ कौशल्य औ पौष्यञ्जि।

हिरण्यनाभ का शिष्य कृत था। कृत ने सामवेद के २४ प्रकार के गान स्वरों का प्रवर्तन किया था।

कृत के बहुत से आनुयायी हुए। इनके अनुयायी सामवेदी आचार्यों को "कार्त" कहा जाता है

"चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।

स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः।" (मत्स्यपुराणः-४९.६७)

(५.) शाखाएँ-

ऋषि पतञ्जलि के अनुसार सामवेद की १००० हजार शाखाएँ थीं-"सहस्रवर्त्मा सामवेदः" (महाभाष्य)।

सम्प्रति इसकी तीन ही शाखाएँ समुपलब्ध है-

(क) कौथुम,

(ख) राणायणीय,

(ग) जैमिनीय,

कौथुम शाखा के अनुसार सामवेद के दो भाग हैं-(क) पूर्वार्चिक , (२.) उत्तरार्चिक।

(क) पूर्वार्चिकः

इसमें कुल चार काण्ड हैं-(क) आग्नेय, (ख) ऐन्द्र, (ग) पावमान (घ) आरण्य-काण्ड।

परिशिष्ट के रूप में १० मन्त्र महानाम्नी आर्चिक हैं।

पूर्वार्चिक में ६ प्रपाठक हैं। कुल मन्त्र ६५० हैं।

प्रपाठकों में अध्याय है, अध्यायों में खण्ड हैं , जिन्हें "दशति" कहा जाता है, खण्डों में मन्त्र हैं।

इसके प्रपाठकों के विभिन्न नाम हैं। जिसमें जिस देवता की प्रधानता है, उसका वही नाम है। जैसे-

(क) प्रथम प्रपाठक का नाम "आग्नेय-पर्व" हैं, क्योंकि इसमें अग्नि से सम्बद्ध मन्त्र हैं। इसके देवता अग्नि ही है। इसमें कुल ११४ मन्त्र हैं।

(ख) द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक का नाम-"ऐन्द्र-पर्व" है, क्योंकि इनमें इन्द्र की स्तुतियाँ की गई हैं। इसके देवता इन्द्र ही है। इसमें ३५२ मन्त्र हैं।

(ग) पञ्चम प्रपाठक का नाम "पवमान-पर्व" है, क्योंकि इसमें सोम की स्तुति की गई है। इसके देवता सोम ही है। इसमें कुल ११९ मन्त्र हैं।

(घ) षष्ठ प्रपाठक का नाम-"अरण्यपर्व" है, क्योंकि इसमें अरण्यगान के ही मन्त्र है। इसके देवता इन्द्र, अग्नि और सोम हैं। इसमें कुल ५५ मन्त्र हैं।

(ङ) महानाम्नी आर्चिक-यह परिशिष्ट हैं। इसके देवता इन्द्र हैं। इसमें कुल १० मन्त्र हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर पूर्वार्चिक में ६५० मन्त्र हुए।

इसका अभिप्राय यह है कि प्रथम से पञ्चम प्रपाठक तक के मन्त्रों का गान गाँवों में हो सकता है। इसलिए इन्हें "ग्रामगान" कहते हैं।

सामगान के चार प्रकार होते हैं-

(क) ग्रामगेय गान इसे "प्रकृतिगान" और "वेयगान" भी कहते हैं। यह ग्राम या सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता था।

(ख) आरण्यगान या आरण्यक गेयगान-यह वनों या पवित्र स्थानों पर गाया जाता था। इसे "रहस्यगान" भी कहते हैं।

(ग) उहगान-"ऊह" का अर्थ है-विचारपूर्वक विन्यास। यह सोमयाग या विशेष धार्मिक अवसरों पर गाया जाता था।

(घ) उह्यगान या रहस्यगान-रहस्यात्मक होने के कारण यह सार्वजनिक स्थानों पर नहीं गाया जाता था।

(ख) उत्तरार्चिक

इसमें कुल २१ अध्याय और ९ प्रपाठक हैं। कुल मन्त्र १२२५ हैं। इसमें कुल ४०० सूक्त हैं।

पूर्वार्चिक में ऋचाओं का छन्द देवताओं के अनुसार है, जबकि उत्तरार्चिक में यज्ञों के अनुसार है।

पूर्वार्चिक में ६५० मन्त्र है, जबकि उत्तार्चिक में १२२५ मन्त्र हैं। दोनों मिलाकर १८७५ हुए।

पूर्वार्चिक के २६७ मन्त्रों की आवृत्ति उत्तरार्चिक में हुई है। १५०४ मन्त्र ऋग्वेद से आगत है।

साममवेदस्थ सामगान मन्त्रों के ५ भाग हैं।

(क) प्रस्ताव-इसका गान "प्रस्तोता" नामक ऋत्विक् करता है। यह "हूँ ओग्नाइ" से प्रारम्भ होता है।

(ख) उद्गीथ-इसे साम का प्रधान ऋत्विक् उद्गाता गाता है। यह "ओम्" से प्रारम्भ होता है।

(ग) प्रतिहार-इसका गान "प्रतिहर्ता" नामक ऋत्विक् करता है। यह दो मन्त्रों को जोडने वाली कडी है। अन्त में "ओम्" बोला जाता है।

(घ) उपद्रव-इसका गान उद्गाता ही करता है।

(ङ) निधन इसका गान तीनों ऋत्विक करते हैं-प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता।

(६.) सामवेद के कुल मन्त्र १८७५ हैं।

ऋग्वेद से आगत मन्त्र हैं १७७१

सामवेद के अपने मन्त्र हैं १०४ = १८७५

ऋग्वेद से संकलित १७७१ मन्त्रों में से भी २६७ मन्त्र पुनरुक्त हैं।

सामवेद के अपने १०४ मन्त्रों में से भी ५ मन्त्र पुनरुक्त हैं।

इस प्रकार पुनरुक्त मन्त्रों की संख्या २७२ है।

सारांशतः-

सामवेद में ऋग्वेदीय मन्त्र १५०४ + पुनरुक्त २६७ कुल हुए= १७७१

सामवेद के अपने मन्त्र ९९ + पुनरुक्त ५, इस प्रकार कुल हुए= १०४

दोनों को मिलाकर कुल मन्त्र हुए-१७७१ + १०४ = १८७५

सामवेद में ऋग्वेद से लिए गए अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के ८ वें और ९ वें मण्डल के हैं।

८ वें मण्डल से ४५० मन्त्र लिए गए हैं,

९ वें मण्डल से ६४५ मन्त्र लिए गए हैं।

१ वें मण्डल से २३७ मन्त्र लिए गए हैं।

१० वें मण्डल से ११० मन्त्र लिए गए हैं।

सामवेद में कुल अक्षर ४००० ३६ = १,४४,००० (एक लाख, चौवालीस हजार हैं।)

सामवेद के ४५० मन्त्रों का गान नहीं हो सकता , अर्थात् ये गेय नहीं है।

कौथुम शाखा में कुल मन्त्र १८७५ हैं, जबकि जैमिनीय शाखा में १६८७ मन्त्र ही है।

इस प्रकार जैमिनीय-शाखा में १८८ मन्त्र कम है।

जैमिनीय शाखा में गानों के ३६८१ प्रकार हैं, जबकि कौथुमीय में केवल २७२२ ही हैं , अर्थात् जैमिनीय-शाखा में ९५९ गान-प्रकार अधिक हैं।

जैमिनीय-शाखा की संहिता, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र सभी उपलब्ध हैं, किन्तु कौथुमीय के नहीं।

ब्राह्मणः-पञ्चविंश (ताण्ड्य) महाब्राह्मण , षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, वंश, जैमिनीय, तलवकार।

आरण्यक कोई नहीं।

उपनिषद्-छान्दोग्य, केनोपनिषद्।

श्रौतसूत्र-खादिर, लाट्यायन, द्राह्यायण।

गृह्यसूत्र खादिर, गोभिल, गौतम।

धर्मसूत्र-गौतम।

शुल्वसूत्र कोई नहीं।

सामवेद से तीन प्रमुख शिक्षाएँ मिलती हैं-

(क) समत्व की भावना जागृत करना।

(ख) समन्वय की भावना। पति-पत्नी को एकत्रित करना। समाज को एकत्रित करना। सबको मिलाना। किसी को अलग नहीं करना।

(ग) साम प्राण है। जीवन में प्राणशक्ति का बडा महत्त्व है। प्राणी इसी से जीता है।

सामवेद शाखाएं

सामवेद की एक हजार शाखाएँ हैं-सहस्रवर्त्मा सामवेदः। कुछ प्रमुख शाखाएँ--- असुरायणीय, वासुरायणीय, वार्तान्तरेय, प्राञ्जल, राणायनीय, शाट्यायनीय, सात्यमुद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लाङ्गल, कौथुम, गौतम और जैमिनीय। उपलब्ध शाखाएँ-- कौथुमीय, राणायनीय और जैमिनीय।

सामवेद : सामान्य परिचय :

वैदिक वाङ्मय में सामवेद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गीता (१०.२२) में श्रीकृष्ण ने स्वयं के लिए सामवेद कहा है-"वेदानां सामवेदोऽस्मि।" इस वेद का महत्त्व इस बात से अधिक है कि सामवेद को द्यु कहा गया है, जबकि ऋग्वेद को पृथिवी कहा है-"साम वा असौ द्युलोकः, ऋगयम भूलोकः।" (ताण्ड्य-ब्राहमण-४.३.५) सामवेद वेदों का सार है। सारे वेदों का रस या सार सामवेद ही है "सर्वेषामं वा एष वेदानां रसो यत् साम।" (शतपथ १२.८.३. २३) (गोपथ-ब्राह्मण-२.५.७) सामवेद के लिए गीतियुक्त होना अनिवार्य है-"गीतिषु सामाख्या।" (पूर्वमीमांसा-२.१.३६) ऋग्वेद और सामवेद का अभिन्न सम्बन्ध हैं। सामवेद के बिना यज्ञ नहीं होता-"नासामा यज्ञो भवति।" (शतपथ-१.४.१.१) जो पुरुष "साम" को जानता है, वही वेद के रहस्य को जान पाता है-"सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्।' (बृहद्देवता) "साम" का शाब्दिक अर्थ है-देवों को प्रसन्न करने वाला गान। सामवेद का प्रकाश आदित्य ऋषि के हृदय में हुआ। आचार्य सायण के अनुसार ऋग्वेद के गाए जाने वाले मन्त्रों को "साम" कहते हैं-"ऋच्यध्यूढं साम।" अर्थात् ऋचाओं पर ही साम आश्रित है। सामवेद उपासना का वेद है। (१.) सामवेद के प्रमुख ऋषि-आदित्य, सामवेद सूर्य है और सामवेद के मन्त्र सूर्य की किरणें हैं-"(आदित्यसत्य) अर्चिः सामानि।" (शतपथ-१०.५.१.५) (२.) सामवेद के गायक ऋत्विज्-उद्गाता, (३.) सामवेद के देवता-आदित्य।। सामवेद की उत्पत्ति सूर्य से हुई है। यह सूर्य-पुत्र है। इसमें सूर्य की शक्ति है-"सूर्यात् सामवेदः अजायत।" (शतपथ-११.५.८.३) (४.) ऋषि व्यास ने सामवेद का अध्ययन कराया-जैमिनि को।

जैमिनि ने सामवेद की शिक्षा अपने पुत्र सुमन्तु को, सुमन्तु ने सुन्वान् को और सुन्वान् ने अपने पुत्र सुकर्मा को दी। सामवेद का विस्तार इसी सुकर्मा ऋषि ने की थी। सुकर्मा के दो शिष्य थे-हिरण्यनाभ कौशल्य औ पौष्यञ्जि। हिरण्यनाभ का शिष्य कृत था। कृत ने सामवेद के २४ प्रकार के गान स्वरों का प्रवर्तन किया था।

कृत के बहुत से आनुयायी हुए। इनके अनुयायी सामवेदी आचार्यों को "कार्त" कहा जाता है-"चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः। स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः।" (मत्स्यपुराणः-४९.६७) (५.) शाखाएँ-ऋषि पतञ्जलि के अनुसार सामवेद की १००० हजार शाखाएँ थीं-"सहस्रवत्मा सामवेदः" (महाभाष्य)। सम्प्रति इसकी तीन ही शाखाएँ समुपलब्ध है-(क) कौथुम, (ख) राणायणीय, (ग) जैमिनीय, कौथुम शाखा के अनुसार सामवेद के दो भाग हैं-(क) पूर्वार्चिक , (२.) उत्तरार्चिक। (क) पूर्वार्चिक:-इसमें कुल चार काण्ड हैं-(क) आग्नेय, (ख) ऐन्द्र, (ग) पावमान (घ) आरण्य-काण्ड।

परिशिप के रूप में २० मन्त्र महानामी आर्चिक हैं। पूर्वार्चिक में ६ प्रपाठक हैं। कुल मन्त्र ६५० हैं। प्रपाठकों में अध्याय है, अध्यायों में खण्ड हैं, जिन्हें "दशति" कहा जाता है, खण्डों में मन्त्र हैं। इसके प्रपाठकों के विभिन्न नाम हैं। जिसमें जिस देवता की प्रधानता है, उसका वही नाम है। जैसे-(क) प्रथम प्रपाठक का नाम-"आग्नेय-परव" हैं, क्योंकि इसमें अग्नि से सम्बद्ध मन्त्र हैं। इसके देवता अग्नि ही है। इसमें कुल ११४ मन्त्र हैं। (ख) द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक का नाम-"ऐन्द्र-पर्व" है, क्योंकि इनमें इन्द्र की स्तुतियाँ की गई हैं। इसके देवता इन्द्र ही है। इसमें

३५२ मन्त्र हैं। (ग) पञ्चम प्रपाठक का नाम-"पवमान-पर्व है, क्योंकि इसमें सोम की स्तुति की गई है। इसके देवता सोम ही है। इसमें कुल ११९

मन्त्र हैं। (घ) षष्ठ प्रपाठक का नाम-"अरण्यपर्व" है, क्योंकि इसमें अरण्यगान के ही मन्त्र है। इसके देवता इन्द्र, अग्नि और सोम हैं। इसमें कुल ५५ मन्त्र हैं। (ङ) महानाम्नी आर्चिक-यह परिशिष्ट हैं। इसके देवता इन्द्र हैं। इसमें कुल १० मन्त्र हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर पूर्वार्चिक में ६५० मन्त्र हुए। इसका अभिप्राय यह है कि प्रथम से पञ्चम प्रपाठक तक के मन्त्रों का गान गाँवों में हो सकता है। इसलिए इन्हें "ग्रामगान" कहते हैं। सामगान के चार प्रकार होते हैं-(क) ग्रामगेय गान-इसे "प्रकृतिगान" और "वेयगान" भी कहते हैं। यह ग्राम या सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता था। (ख) आरण्यगान या आरण्यक गयगान-यह वनो या पवित्र स्थानों पर गाया जाता था। इसे "रह गेयगान-यह वनों या पवित्र स्थानों पर गाया जाता था। इसे "रहस्यगान" भी कहते हैं। (ग) उहगान-"ऊह" का अर्थ है-विचारपूर्वक विन्यास। यह सोमयाग या विशेष धार्मिक अवसरों पर गाया जाता था। (घ) उह्यगान या रहस्यगान-रहस्यात्मक होने के कारण यह सार्वजनिक स्थानों पर नहीं गाया जाता था। (ख) उत्तरार्चिक-इसमें कुल २१ अध्याय और ९ प्रपाठक हैं। कुल मन्त्र १२२५ हैं। इसमें कुल ४०० सूक्त हैं। पूर्वार्चिक में ऋचाओं का छन्द देवताओं के अनुसार है, जबकि उत्तरार्चिक में यज्ञों के अनुसार है। पूर्वार्चिक में ६५० मन्त्र है, जबकि उत्तार्चिक में १२२५ मन्त्र हैं। दोनों मिलाकर १८७५ हुए। पूर्वार्चिक के २६७ मन्त्रों की आवृत्ति उत्तरार्चिक में हुई है। १५०४ मन्त्र ऋग्वेद से आगत है। साममवेदस्थ सामगान मन्त्रों के ५भाग हैं-(क) प्रस्ताव-इसका गान "प्रस्तोता" नामक ऋत्विक करता है। यह "हूँ ओग्नाइ" से प्रारम्भ होता है। (ख) उद्गीथ-इसे साम का प्रधान ऋत्विक उद्गाता गाता है। यह "ओम" से प्रारम्भ होता है। (ग) प्रतिहार-इसका गान "प्रतिहर्ता" नामक ऋत्विक् करता है। यह दो मन्त्रों को जोडने वाली कडी है। अन्त में "ओम्" बोला

जाता है। (घ) उपद्रव-इसका गान उद्गाता ही करता है। (ङ) निधन-इसका गान तीनों ऋत्विक करते हैं-प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता। (६.) सामवेद के कुल मन्त्र-१८७५ हैं। ऋग्वेद से आगत मन्त्र हैं-१७७१ सामवेद के अपने मन्त्र हैं-१०४ = १८७५ ऋग्वेद से संकलित १७७१ मन्त्रों में से भी २६७ मन्त्र पुनरुक्त हैं। सामवेद के अपने १०४ मन्त्रों में से भी ५ मन्त्र पुनरुक्त हैं। इस प्रकार पुनरुक्त मन्त्रों की संख्या २७२ है। सारांशतः-सामवेद में ऋग्वेदीय मन्त्र १५०४ + पुनरुक्त २६७ कुल हुए= १७७१ सामवेद के अपने मन्त्र-९९ + पुनरुक्त ५, इस प्रकार कुल हुए= १०४ दोनों को मिलाकर कुल मन्त्र हुए-१७७१ + १०४ = १८७५ सामवेद में ऋग्वेद से लिए गए अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के ८ वें और ९वें मण्डल के हैं। ८ वें मण्डल से ४५० मन्त्र लिए गए हैं, ९३ मण्डल से ६४५ मन्त्र लिए गए हैं। १वें मण्डल से २३७ मन्त्र लिए गए हैं। १० वें मण्डल से ११० मन्त्र लिए गए हैं। सामवेद में कुल अक्षर ४००० * ३६ = १,४४,००० (एक लाख, चौवालीस हजार(हैं। सामवेद के ४५० मन्त्रों का गान नहीं हो सकता, अर्थात् ये गेय नहीं है। कौथुम शाखा में कुल मन्त्र १८७५ हैं, जबकि जैमिनीय शाखा में १६८७ मन्त्र ही है। इस प्रकार जैमिनीय-शाखा में १८८ मन्त्र कम है।

जैमिनीय शाखा में गानों के ३६८१ प्रकार हैं, जबकि कौथुमीय में केवल २७२२ ही हैं , अर्थात् जैमिनीय-शाखा में ९५९ गान-प्रकार अधिक हैं। जैमिनीय-शाखा की संहिता, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र सभी उपलब्ध हैं, किन्तु कौथुमीय के नहीं।

ब्राह्मणः-पञ्चविंश (ताण्ड्य) महाब्राह्मण , षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, वंश, जैमिनीय, तलवकार। आरण्यक कोई नहीं। उपनिषद्-छान्दोग्य, केनोपनिषद्। श्रौतसूत्र-खादिर, लाट्यायन, द्राशायण। गृह्यसूत्र-खादिर, गोभिल, गौतम। धर्मसूत्र-गौतम। शुल्वसूत्र कोई नहीं। सामवेद से तीन प्रमुख शिक्षाएँ मिलती हैं-(क) समत्व की भावना जागृत करना। (ख) समन्वय की भावना। पति-पत्नी को एकत्रित करना। समाज को एकत्रित करना। सबको मिलाना। किसी को अलग नहीं करना (ग) साम प्राण है। जीवन में प्राणशक्ति का बड़ा महत्त्व है। प्राणी इसी से जीता है।

18. अथर्ववेद एक सामान्य परिचय

अथर्ववेद का अर्थ-अथर्यों का वेद, वेदों में अन्यतम अथर्ववेद एक महती विशिष्टता से युक्त है।। अथर्ववेद का अर्थ-अथरों का वेद (ज्ञान), और अङ्गिरों का ज्ञान अर्थात् अभिचार मन्त्रों से सम्बन्धित ज्ञान। (१.) अथर्वन्-स्थिरता से युक्त योग। निरुक्त (११.१८) के अनुसार "थर्व" धातु से यह शब्द बना है, जिसका अर्थ है-गति या चेष्टा।

अतः "अथर्वन्" शब्द का अर्थ है-स्थिरता। इसका अभिप्राय है कि जिस वेद में स्थिरता या चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है, वह अथर्वन् वेद है-"अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः। थर्वतिश्चरतिकर्मा, तत्प्रतिषेधः।" निरुक्त (११.१८) (२.) गोपथ-ब्राह्मण के अनुसार-समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या वेद वह जिसमें आत्मा को अपने अन्दर देखने की विद्या का उपदेश हो। प्राचीन काल में अथर्वन् शब्द पुरोहितों का द्योतक था।

19. यजुर्वेद एक संक्षिप्त परिचय

"यजुस" के नाम पर ही वेद का नाम यजुस+वेद(यजुर्वेद) शब्दों की संधि से बना है। "यजुस्" का अर्थ समर्पण से होता है। इसका मुख्य अर्थ है:-(1.) "यजुर्यजतेः "(निरुक्तः-

7.12) अर्थात् यज्ञ से सम्बद्ध मन्त्रों को "यजुष" कहते हैं। (2.) "इज्यतेनेनेति यजुः।" अर्थात् जिन मन्त्रों से यज्ञ किया जाता है, उन्हें यजुष कहते हैं। पदार्थ (जैसे ईंधन, घी, आदि), कर्म (सेवा, तर्पण), श्राद्ध, योग, इंद्रिय निग्रह इत्यादि के हवन को यजन यानि समर्पण की क्रिया कहा गया है। यजुर्वेद का यज्ञ के कर्मकाण्ड से साक्षात् सम्बन्ध है, अतः इसे "अध्वर्युवेद" भी कहा जाता है। यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज् यजुर्वेद का प्रतिनिधित्व करता है और वही यज्ञ का नेतृत्व करता है। इसीलिए सायण ने कहा है कि वह यज्ञ के स्वरूप का निष्पादक है।

(3.) अनियताक्षरावसानो यजुः। अर्थात् जिन मन्त्रों में पद्यों के तुल्य अक्षर-संख्या निर्धारित नहीं होती है, वे यजुष हैं। (4.) शेषे यजुःशब्दः। (पूर्वमीमांसा 2.1.37) अर्थात् पद्यबन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सभी गद्यात्मक मन्त्र-रचना यजुः की कोटि में आती है। (5.) एकप्रयोजनं साकांक्षं पदजातमेकं यजुः। अर्थात् एक उद्देश्य से कहे हुए साकांक्ष एक पज-समूह को एक यजुः कहेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि एक सार्थक वाक्य को यजुः की एक इकाई माना जाता है।

मुख्य वेद-यजुर्वेद

तैत्तिरीय-संहिता के भाष्य की भूमिका में सायण ने यजुर्वेद का महत्त्व बताते हुए कहा है कि यजुर्वेद भित्ति (दीवार) है और अन्य ऋग्वेद एवं सामवेद चित्र है। इसलिए यजुर्वेद सबसे मुख्य है। यज्ञ को आधार बनाकर ही ऋचाओं का पाठ और सामगान होता है।

"यजुस" के नाम पर ही वेद का नाम यजु...

"भित्तिस्थानीयो यजुर्वेदः, चित्रस्थानावितरौ। तस्मात् कर्मसु यजुर्वेदस्यैव प्राधान्यम्।" (तै.सं. भू.) यजुर्वेद का दार्शनिक रूपः-

ब्राह्मण-ग्रन्थों में यजुर्वेद का दार्शनिक रूप प्रस्तुत किया गया है। यजुर्वेद विष्णु का स्वरूप है, अर्थात् इसमें विष्णु (परमात्मा) के स्वरूप का वर्णन है। "यजूंषि विष्णुः।" शतपथ-ब्राह्मण 4.6.7.3)) यजुर्वेद प्राणतत्त्व और मनस्तत्त्व का वर्णन करता है, अतः वह प्राण है, मन है:-"प्राणो वै यजुः।" (शतपथ-ब्राह्मण 14.8.14.2) | "मनो यजुः।" (शतपथ-ब्राह्मण-14.4.3.12) यजुर्वेद में वायु और अन्तरिक्ष का वर्णन है, अतः वह अन्तरिक्ष का प्रतिनिधि है | "अन्तरिक्षलोको यजुर्वेदः।" (षड्विंश-ब्राह्मण 1.5) यजुर्वेद तेजस्विता का उपदेश देता है, अतः वह महः (तेज) है। "यजुर्वेदः एव महः।" (गोपथ-ब्राह्मण 5.15) । यजुर्वेद क्षात्रधर्म और कर्मठता की शिक्षा देता है. अतः वह क्षत्रियों का वेद है। "यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर योनिम्।" (तैत्तिरीय-ब्राह्मण 3.12.9.2) इस वेद में अधिकांशतः यज्ञों और हवनों के नियम और विधान हैं, अतःयह ग्रन्थ कर्मकाण्ड प्रधान है। यजुर्वेद की संहिताएं लगभग अंतिम रची गई संहिताएं थीं, जो ईसा पूर्व द्वितीय सहस्राब्दि से प्रथम सहस्राब्दी के आरंभिक सदियों में लिखी गई थी। इस ग्रन्थ से आर्यों के सामाजिक और धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। उनके समय की वर्ण-व्यवस्था तथा वर्णाश्रम की झाँकी भी इसमें है। यजुर्वेद संहिता में वैदिक काल के धर्म के कर्मकाण्ड आयोजन हेतु यज्ञ करने के लिये मंत्रों का संग्रह है। इनमे कर्मकाण्ड के कई यज्ञों का विवरण है:

अग्निहोत्र अश्वमेध वाजपेय सोमयज्ञ राजसूय

अग्निचयन

ऋग्वेद के लगभग ६६३ मंत्र यथावत् यजुर्वेद में मिलते हैं। यजुर्वेद वेद का एक ऐसा प्रभाग है, जो आज भी जन-जीवन में अपना स्थान किसी न किसी रूप में बनाये हुऐ है संस्कारों एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों के अधिकांश मन्त्र यजुर्वेद के ही हैं।

राष्ट्रोत्थान हेतु प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्र राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ यजुर्वेद २२, मन्त्र २२

अर्थ

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी। क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी || होवें दुधारू गौएँ, पशु अश्व आशुवाही। आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही॥ बलवान सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें। इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें॥ फल-फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी। हों योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ||

संप्रदाय

यजुर्वेदाध्यायी परम्परा में दो सम्प्रदाय-आदित्य सम्प्रदाय और ब्रह्म सम्प्रदाय प्रमुख हैं। शुक्लयजुर्वेद आदित्य सम्प्रदाय से सम्बन्धित है और कृष्णयजुर्वेद ब्रह्म-सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। आदित्य सम्प्रदाय से सम्बन्धित शुक्लयजुर्वेद का आख्यान याज्ञवल्क्य ऋषि ने किया है:-आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि। वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते। (शतपथ-ब्राह्मण-14.9.4.33)

संहिताएँ

वर्तमान में कृष्ण यजुर्वेद की शाखा में ४ संहिताएँ-तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ और कपिष्ठल कठ ही उपलब्ध हैं। शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं में दो प्रधान संहिताएँ-१. मध्यदिन संहिता और २. काण्व संहिता ही वर्तमान में उपलब्ध हैं। आजकल प्रायः उपलब्ध होने वाला यजुर्वेद मध्यदिन संहिता ही है। इसमें ४० अध्याय, १९७५ कण्डिकाएँ (एक कण्डिका कई भागों में यागादि अनुष्ठान कर्मों में प्रयुक्त होने से कई मन्त्रों वाली होती है।) तथा ३९८८ मन्त्र हैं। विश्वविख्यात गायत्री मंत्र (३६.३) तथा महामृत्युञ्जय मन्त्र (३.६०) इसमें भी है।

शाखाएँ

यजुर्वेद मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है: (1.) शुक्लयजुर्वेद (2.) कृष्णयजुर्वेद। शुक्लयजुर्वेद को ही वाजयनेयि-संहिता और माध्यन्दिन-संहिता भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य इसके ऋषि हैं। वे मिथिला के निवासी थे। इनके पिता का नाम वाजसनि होने के कारण याज्ञवल्क्य को वाजसनेय कहते थे। वाजसनेय से सम्बद्ध संहिता वाजसनेयि-संहिता कहलाई। याज्ञवल्क्य ने मध्याह्न के आदित्य (सूर्य) से इस वेद को प्राप्त किया था, अतः इसे माध्यन्दिन-संहिता भी कहते हैं।

शुक्ल और कृष्ण भेदों का आधार यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में यज्ञों से सम्बद्ध विशुद्ध मन्त्रात्मक भाग है। इसमें व्याख्या, विवरण और विनियोगात्मक भाग नहीं है। ये मन्त्र इसी रूप में यज्ञों में पढे जाते हैं। विशुद्ध और परिष्कृत होने के कारण इसे शुक्ल (स्वच्छ, अमिश्रित) यजुर्वेद कहा जाता है। कृष्ण यजुर्वेद का सम्बन्ध ब्रह्म-सम्प्रदाय से है। इसमें मन्त्रों के साथ ही व्याख्या और विनियोग वाला अंश भी मिश्रित है, अतः इसे कृष्ण (अस्वच्छ, मिश्रित) कहते हैं। इसी आधार पर शुक्ल यजुर्वेद के पारायण कर्ता ब्राह्मणों को शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद के पारायण कर्ता ब्राह्मणों को मिश्र नाम दिया गया है।

महर्षि पतञ्जलि ने यजुर्वेद की 101 शाखाओं का उल्लेख किया है। एकशतमध्वर्युशाखाः। (महाभाष्य-पस्पशाह्निक) षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमनिका की वृत्ति में तथा कूर्मपुराण में भी यजुर्वेद की 100 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु चरणव्यूह में यजुर्वेद 86 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। इसका विवरण भी वहाँ दिया हुआ है:-

(1) चरकशाखा 12,

(2) मैत्रायणीय 7,

(3) वाजयनेय-17,

(4) तैत्तिरीय-6,

(5) कठ-44

इस समय यजुर्वेद की केवल 6 शाखाएँ ही उपलब्ध होती है, और यही नाम भी उपलब्ध है। अन्य शाखाएँ लुप्त हो गई या आक्रान्ताओं ने नष्ट कर दिया।

(1) शुक्लयजुर्वेदः-वाजसनेयि (माध्यन्दिन) और कण्व-शाखा (2.) कृष्णयजुर्वेदः काठक , कपिष्ठल, मैत्रायणी , तैत्तिरीय।

शुक्लयजुर्वेदः

सम्प्रति शुक्लयजुर्वेद की दो शाखाएँ ही उपलब्ध होती हैः (1.) माध्यन्दिन या वाजसनेयि-संहिता-

इसमें 40 अध्याय और 1975 मन्त्र हैं। इसमें कुल 2,88,000 शब्द हैं। इसका अन्तिम अध्याय 40वाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् कहलाता है। इस शाखा का प्रचार सम्प्रति उत्तर भारत में है।

(2.) काण्व-संहिता-

इसमें भी 40 अध्याय हैं किन्तु मन्त्र अधिक है-2086 अर्थात् वाजसनेयि-शाखा से इसमें 111 मन्त्र अधिक है। इसमें अध्याय 40,

अनुवाक 328 और मन्त्र 2086 है। दोनों शाखाओं के मन्त्रों के क्रम में भी अन्तर है। इस शाखा के ऋषि महर्षि कण्व है, जो ऋग्वेद के कई सूक्तों के ऋषि भी हैं, इसका वंश भी उपलब्ध होता है। इनके पिता बोधायन माने जाते हैं और गुरु याज्ञवल्क्य थे। सम्प्रति इस शाखा का प्रचार महाराष्ट्र में है। किन्तु प्राचीन काल में इसका प्रचार उत्तर भारत में भी था। कण्व ऋषि का सम्बन्ध उत्तर भारत से ही था। साम्राज्ञी शकुन्तला के ये धर्मपिता थे। इनका आश्रम मालिनी नदी (सम्प्रति बिजनौर जिले के कोटद्वार के पास मालन नदी) के तट पर था।

कहा जाता है कि वेद व्यास के शिष्य वैशंपायन के २७ शिष्य थे, इनमें सबसे प्रतिभाशाली थे याज्ञवल्क्य। इन्होंने एक बार यज्ञ में अपने साथियो की अज्ञानता से क्षुब्ध हो गए। इस विवाद के देखकर वैशपायन ने याज्ञवल्क्य से अपनी सिखाई हुई विद्या वापस मांगी। इस पर क्रुद्ध याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का वमन कर दिया-ज्ञान के कण कृष्ण वर्ण के रक्त से सने हुए थे। इससे कृष्ण यजुर्वेद का जन्म हुआ। यह देखकर दूसरे शिष्यों ने तीतर बनकर उन दानों को चुग लिया और इससे तैत्तरीय संहिता का जन्म हुआ।

यजुर्वेद के भाष्यकारों में उवट (१०४० ईस्वी) और महीधर (१५८८) के भाष्य उल्लेखनीय हैं। इनके भाष्य यज्ञीय कर्मों से संबंध दर्शाते हैं। श्रृंगेरी के शंकराचार्यों में भी यजुर्वेद भाष्यों की विद्वत्ता की परंपरा रही है।

शुक्लयजुर्वेद की विषय वस्तु

यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। इसमें विभिन्न यज्ञों की विधियाँ और उनमें पाठ्य मन्त्रों का संकलन है। यज्ञ करने वाले ऋत्विज को अध्वर्यु कहते हैं। ऋग्वेद में अध्वर्यु के विषय में कहा गया है कि वह यज्ञ का संयोजक और निष्पादक होता है, अतः वह यज्ञ का नेता होता है: "यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः।" (ऋग्वेदः 10.71.11) यास्क ने अध्वर्यु की व्याख्या की है.-"अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता।" (निरुक्तः 1.3) अर्थात् यज्ञ का संयोजक और यज्ञ का नेता। दोनों शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद की विषय-वस्तु प्रायः समान ही है। यहाँ वाजसनेयि-संहिता का प्रतिपाद्य प्रस्तुत है: अध्याय एक और दो-इसमें दर्श (अमावास्या के बाद वाली प्रतिपदा को दर्श कहा जाता है) और पौर्णमास (पूर्णिमा) से सम्बद्ध यागों का वर्णन है।

अध्याय तीन-इसमें अग्निहोत्र और चातुर्मास्य इष्टियों का वर्णन है। इसका अभिप्राय है-चार-चार मास पर ऋतु-परिवर्तन होने पर किए जाने वाले विशेष यज्ञ।

अध्याय-4 से 8 तक-इनमें अग्निष्टोम और सोमयाग का वर्णन है। अग्निष्टोम ज्योतिष्टोम का परिष्कृत रूप है। यह स्वर्ग की कामना से किया जाता है। इसमें 16 पुरोहित होते हैं और यह पाँच दिन चलता है। सोमयाग में सोमरस में दूध मिलाकर आहुति दी जाती है | यह याग प्रातः मध्याह्न और सायं तीन बार होता है, अतः इसे प्रातःसवन, मध्याह्न सवन और सायं सवन कहते हैं।

अध्याय-9 और 10 इनमें वाजपेयी और राजसूय यागों का वर्णन है। अध्याय-11 से 18 तक-इनमें अग्निचयन और विविध प्रकार की वेदियों के निर्माण से सम्बद्ध मन्त्र हैं। वेदी की रचना 10,800 ईंटों से होती थी और इनकी आकृति यज्ञ के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती थी। कुछ वेदियाँ श्येन (गरुड) आदि पक्षियों के आकार की होती थी।

अध्याय-19 से 21 तक-इनमें सौत्रामणि याग का विधान है। राज्य-च्युत राज इस याग को राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए करता था।

अध्याय-22 से 25 तक-इनमें अश्वमेध-यज्ञ का विस्तृत वर्णन है। जन्तुविज्ञान की दृष्टि से ये अध्याय अतिमहत्त्वपूर्ण है। इनमें सैंकडों पक्षियों का उल्लेख हुआ है। अध्याय-26 से 29

तक ये खिल अध्याय हैं। अध्याय-30 इसमे पुरुषमेध का वर्णन है। इसमें पूरे समाज को एक पुरुष माना गया है। इसमें 184 व्यवसायों का उल्लेख हुआ है | समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह अध्याय अति महत्त्वपूर्ण है। अध्याय 31 इसे पुरुष सूक्य और विष्णु सूक्त भी कहते हैं। इसमें विराट् पुरुष के स्वरूप का वर्णन है। अध्याय 32-इसमें विराट् पुरुष के दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन है। अध्याय 33 इसमें सर्वमेध सूक्त है। अध्याय 34-इसके प्रारम्भ के 6 मन्त्र शिवसंकल्पसूक्त है। मनोविज्ञान की दृष्टि से ये महत्त्वपूर्ण हैं।

अध्याय 35 इसमें पितृमेध का वर्णन है। अध्याय 36 से 38 तक-इनमें प्रवचूनामक यज्ञ का वर्णन है। अद्याय 39-इसमें अन्त्येष्टि-संस कार से सम्बद्ध मन्त्र है। इसे प्रायश्चित्ताध्याय भी कहते हैं। अध्याय 40-इसके मन्त्र ईशावास्योपनिषद् में भी आए हैं। इस उपनिषद् का प्रथम स्थान प्राप्त है। इसमे अध्यात्म और दर्शन का अपूर्व वर्णन है।

इन यागों , इष्टियों का उद्देश्य विशेष रूप है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए इन्हें किया जाता था। कुछ यज्ञ राजा की श्रीवृद्धि के लिए किया जाता था। कुछ यज्ञ ब्राह्मणों की ओजस्विता, तेजस्विता एवं मेधा-वृद्धि के लिए किया जाता था। कुछ यज्ञ सार्वजनिक उन्नति के लिए किया जाता था।

कृष्णयजुर्वेद

चरण व्यूह के अनुसार यजुर्वेद की 86 शाखाएँ हैं, जिनमें से शुक्ल यजुर्वेद की 17 और शेष 69 शाखाएँ कृष्ण यजुर्वेद की हैं। कृष्ण यजुर्वेद में भी तैत्तिरीय शाखा के दो मुख्य भेद है:-औख्य और खाण्डिकेय। खाण्डिकेय के पाँच भेद हैं आपस्तम्ब, बोधायन, सत्याषाढ, हिरण्यकेशि और कात्यायन। मैत्रायणी के सात भेद हैं और कठ (चरक) के 12 भेद हैं। कठ के 44 उपग्रन्थ भी हैं। सम्प्रति कृष्णयजुर्वेद की केवल चार ही शाखाएँ उपलब्ध हैं: (1.) तैत्तिरीय, (2.) मैत्रायणी, (3.) कठ, (4.) कपिष्ठल।

तैत्तिरीय-संहिता

यह कृष्णयजुर्वेद की सर्वप्रमुख संहिता है। इसमें 7 काण्ड, 44 प्रपाठक और 631 अनुवाक है। अनुवाकों में भी उपभेद (खण्ड) पाए जाते हैं। जैसे:-

देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्य।" (तै.सं. का.2,प्र.4,अनु.8 खण्ड-1)

यही एक संहिता है, जिसके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, शुल्बसूत्र और धर्मसूत्र सभी ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। यह संहिता परिपूर्ण व सर्वांगपूर्ण है। इसी संहिता के बोधायन और आपस्तम्ब के श्रौत-गृह्य-शुल ब-धर्मसूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसमें भी शुक्ल यजुर्वेद के तुल्य विविध यागों का वर्णन है।

इसके काण्डों के अनुसार वर्ण्य-विषयः

(1.) काण्ड-1-दर्शमर्णमास, अग्निष्टोम, राजसूय। (2.) काण्ड-2-पशुविधान, इष्टि विधान। (3.) काण्ड 3 पवमान ग्रह आदि, वैकृत विधि, इ.टिहोम। (4.) काण्ड 4 अग्निचिति, देवयजनग्रह, चितिवर्णन, वसोर्धारा संस्कार। (5.) काण्ड-5-उख्य अग्नि, चितिनिरूपण, इष्टकात्रय, वायव्य पशु आदि। (6.) काण्ड 6-सोममनत्रब्राह्मण | (7.) काण्ड-7 अश्वमेध, षड्रात्र आदि सत्रकर्म।

इस संहिता का विशेष, प्रचार महाराष्ट्र, आन्ध्र व अन्य द. भारत में है। आचार्य सायण इसी शाखा के ब्राह्मण थे। इसलिए उन्होंने सर्वप्रथण इसी शाखा का भाष्य किया था। सायण से पूर्ववर्ती भट्ट भास्कर मिश्र (11 वीं शती) ने भी "ज्ञानयज्ञ" नामक भाष्य इस पर किया था। डॉ. कीथ ने इसका आंग्लभाषा में अनुवाद किया था।

मैत्रायणी संहिता

मैत्रायणीय शाखा कठ (चरक) की 12 शाखाओं में से एक है। मैत्रायणी संहिता की सात शाखाओं का उल्लेख चरण व्यूह में मिलता है। ये शाखाएँ हैं

(1.) मानव, (2.) दुन्दुभ, (3.) ऐकेय, (4.) वाराह, (5.) हारिद्रवेय, (6.) श्याम, (7.) श्यामायनीय। इस शाखा के प्रवर्तक मैत्रायण या मैत्रेय है:-अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य सन्ततिम्। दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित युनृप। मैत्रायणी ततः शाखा मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः।। (हरिवंश पुराण-अ. 34)

इस संहिता में मन्त्र और व्याख्या भाग (ब्राह्मण या गद्यभाग) मिश्रित है। इसमें 4 काण्ड , 54 प्रपाठक और 3144 मन्त्र हैं। इनमें से 1701 मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत है।

वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से अन्य यजुर्वेद की शाखाओं के तुल्य इसमें भी विभिन्न यागों का वर्णन है। (1.) काण्ड-1 दर्शपूर्णमास, अध्वर, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य और वाजपेय याग। (2.) काण्ड 2-काम्य इष्टियाँ, राजसूय और अग्निचिति। (3.) काण्ड-3 अग्निचिति, अध्वर आदि की विधि, सौत्रामणी और अश्वमेध याग। (4.) काण्ड-4-यह खिल पाठ है। इसमें राजसूय, अध्वर, प्रवर्दी और याज्यानुवाक।

काठक संहिता

इसे कठ-संहिता भी कहा जाता है। यह कठ-शाखा की संहिता है। यह चरकों की शाखा मानी जाती है। इसमें पाँच खण्ड है:-(1.) इठिमिका, (2.) मध्यमिका, (3.) ओरामिका, (4.) याज्यानुवाक्या, (5.) अश्वमेधादि अनुवचन।

इसके उपखण्डों को स्थानक और अनुवचन कहा जाता है। इसका वर्णन इस प्रकार है:-खण्ड-1 इठिमिका, स्थानक 1 से 18, मन्त्र 1 से 1538 खण्ड 2-मध्यमिका, स्थानक 19 से 30, मन्त्र 1539 से 2053 खण्ड 3 ओरिमिका] खण्ड 4-याज्यानुवाक्या] स्थानक 31 से 40, मन्त्र 2054 से 2799 खण्ड 5-अश्वमेधादि वचन 1 से 13, मन्त्र 2800 से 3028

इस प्रकार पाँच खण्डों में 40+ वचन 13 = 53 उपखण्ड, अनुवाक 843 और 3028 मन्त्र हैं। मन्त्र और ब्राह्मणों की सम्मिलित संख्या 18 हजार है।

काठक-संहिता में वर्णित प्रमुख 19 याग क्रमशः ये हैं: (1.) दर्श-पूर्णमास, (2.) ज्योतिष्टोम, (3.) अग्निहोत्र, (4.) उपस्थान आदि कर्म, (5.) आधान, (6.) काम्य इष्टियाँ, (7.) विविध-पयस्या याग, (8.) पशुबन्ध, (9.) वाजपेय, (10.) राजसूय, (11.) अग्निचयन, (12.) पत्नीव्रत-याग, (13.) अतिरात्र आदि सत्र, (14.) एकदशिनी, (15.) प्रायश्चित्तिया, (16.) चातुर्मास्य, (17.) गोसव आदि याग, (18.) सौत्रामणी, (19.) अश्वमेध। कृष्णयजुर्वेद की चारों संहिताओं में प्रायः स्वरूप की एकता है और विविध यागों में प्रयुक्त मन्त्रों में भी बहुत साम्य है। इसका कारण यह है कि ये शाखाएँ वस्तुतः यजुर्वेद की ही शाखाएँ हैं, अतः इनमें में साम्य है। महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है-"ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च

प्रोच्यते।" (महाभाष्य-4.3.101) इससे ज्ञात होता है कि पतञ्जलि (150 ई.पू.) के समय में काठक और कलाप-शाखा का प्रचार गाँव-गाँव में था। आजकल यह शाखा लुप्तप्राय है। इस शाखा में उदात्त अक्षर के ऊपर ही ऊर्ध्व रेखा (स्वरित जैसा चिह्न) है। अनुदात्त और स्वरित पर कोई चिह्न नहीं है।

कपिष्ठल (कठ) संहिता

यह शाखा "चरणव्यूह" के अनुसार चरकों की 12 शाखाओं में से एक है। प्राचीन काल में कठों की कई शाखाएँ प्रचलित थीं, जैसे कठ, प्राच्य कठ और कपिष्ठल कठ। इस शाखा के प्रवर्तक कपष्ठल ऋषि थे। पाणिनि ने "कपिष्ठलो गोत्रे" (8.3.91) तथा दुर्गाचार्य ने निरुक्त-टीका (4.4) में अहं च कपिष्ठलो वासिष्ठः" का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि ये वसिष्ठ-गोत्र के थे। विद्वानों का

अनुमान है कि कुरुक्षेत्र के पास "कैथल" ग्राम कपिष्ठल का ही अपभ्रंश है और यह कपिष्ठल ऋषि का निवास स्थान था।

डॉ. रघुवीर ने इसका एक सुन्दर संस्करण 1932 में लाहौर से प्रकाशित कराया था। यह संहिता ऋग्वेद की तरह अष्टकों और अध्यायों में विभक्त है। इसमें स्वरांकन पद्धति काठक-संहिता के तुल्य है। इसके केवल 6 अष्टक उपलब्ध हैं। 48 अध्याय पर समाप्ति है। बीच में कई अध्याय सर्वथा नहीं है या अपूर्ण है। इसमें अध्याय 9 से 24, 32, 33 और 43 सर्वथा खण्डित है।

अश्वमेधादि याग

यजुर्वेद के कई अध्यायों में "मेध" वाले यज्ञ हैं। यथा-अश्वमेध (22.29), पुरुषमेध या नरमेध (30.31), सर्वमेध (32.33), पितृमेध (35.29)। कतिपय भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों को भ्रान्ति है कि "मेध" शब्द केवल बलिया वध का वाचक है। यह शब्द मेध संगमे च धातु से बना है, जिसका अर्थ है-संगम (गुणों से युक्त होना), मेधा (ज्ञानवृद्धि) और हिंसा। अतः केवल हिंसा अर्थ को लेकर सर्वत्र बलि देना अर्थ करना अज्ञानता है। कालिदास ने भी मेध शब्द का प्रयोग किया है "प्रजायै गृहमेधिनाम्" (रघुवंश) अर्थात् सन्तान के लिए गृहमेधी (गृहस्थी) होना। गृहमेध का अर्थ घर को बलि देना अर्थ नहीं हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि मेध शब्द का प्रयोग उन्नति, प्रगति, तेजस्विता आदि के लिए होता था। यजुर्वेद में मेध शब्द का अर्थ घी, अन्न और भोज्य पदार्थ तथा पौष्टिक पदार्थ बताए गए हैं। अतः जौ, चावल और पुरोडाश को मेध बताया है। यजुर्वेद में अश्वमेध आदि शब्द राष्ट्रिय उन्नति और प्रगति के लिए है।यथा पितृमेध या पितृयज्ञ का अभिप्राय है-माता-पिता की सेवा शुश्रूषा और उन्हें अन्नादि से तृप्त रखना। मेध शब्द का प्रयोग श्रीवृद्धि, समृद्धि, उन्नति आदि के लिए होता था। शतपथ और तैत्तिरीय

नेक पारिभाषिक व्याखायाएं की गई हैं।इसके अनसार अश्वमेध का अर्थ है राध की श्रीवद्धि. राष्ट्र को धन-धान्य से समृद्ध करना, राष्ट्र को तेजस्वी ऊर्जस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाना। इसी प्रकार पुरुषमेध (नरमेध) का अर्थ है-मनुष्य की सर्वागीण उन्नति। सर्वमेध का अर्थ है-प्रजामात्र की सर्वतोमुखी उन्नति। अत एव गोपथ ब्राह्मण में कहा है कि सर्वमेध अर्थात् सर्वजन समुन्नति के द्वारा राजा सर्वराट् (सबका अधिपति) हो जाता है। गोमेध का अभिप्राय है-गोवंश की रक्षा करना और पशु-समृद्धि।

20. यजुर्वेद का सामान्य परिचय

यजुर्वेद यज्ञ कर्म के लिए उपयोगी ग्रन्थ है। गद्यात्मक भाग के "यजुः" कहा जाता है। यजुस् की प्रधानता के कारण इसे "यजुर्वेद" कहा जाता है। यजुष के अन्य अर्थः-(१.) यजुर्यजतेः (निरुक्त-७.१२) (यज्ञ से सम्वद्ध मन्त्रों को यजुष् कहते हैं।) (२.) इज्यते अनेनेति यजुः। (जिन मन्त्रों से यज्ञ किया जाता हैं, उन्हें यजुष् कहते हैं।) (३.) अनियताक्षरावसानो यजुः। (जिन मन्त्रों में पद्यों के तुल्य अक्षर-संख्या निर्धारित नहीं होती है, वे यजुष हैं।) (४.) शेषे यजुःशब्दः। (पूर्वमीमांसा-२.१.३७) (पद्यबन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष कहते हैं।) (५.) एकप्रयोजनं साकांक्षं पदजातमेकं यजुः। (एक उद्देश्य से कहे हुए साकांक्ष एक पद-समूह को यजुः कहेंगे।)

इस वेद की दो परम्पराएँ हैं :-कृष्ण और शुक्ल। . शुक्ल यजुर्वेद में शुद्ध रूप में मन्त्र मात्र संकलित है, किन्तु कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ ब्राह्मण मिश्रित है। शाखाएँ महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ बताई है, किन्तु उपलब्धता कम है। (१) शुक्ल यजुर्वेद इसकी कुल १६ शाखाएँ बताई जाती हैं , किन्तु सम्प्रति २ ही शाखाएँ उपलब्ध हैं-(१.) माध्यन्दिन (वाजसनेयी) शाखा, (२.) काण्व शाखा। माध्यन्दिन-शाखा के मुख्य ऋषि याज्ञवल्क्य हैं। ये मिथिला के निवासी थे। इनके पिता वाजसनि थे, अतः याज्ञवल्क्य वाजसनेय कहलाए। उनके नाम पर इस यजुर्वेद को वाजसनेयी शाखा भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य ऋषि ने आदित्य ऋषि से इसे दिन के मध्य भाग में प्राप्त किया था, अतः इसे माध्यन्दिन शाखा कहा गया। इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार उत्तर भारत में है। काण्व ऋषि के पिता बोधायन थे। काण्व के गुरु याज्ञवल्क्य ही थे। काण्व-शाखा का सर्वाधिक प्रचार महाराष्ट्र में हैं।

(२) कृष्ण यजुर्वेद :

इसकी कुल ८५ शाखाएँ बताई जाती हैं किन्तु सम्प्रति ४ शाखाएँ ही उपलब्ध हैं-(१.) तैत्तिरीय-संहिता, (२.) मैत्रायणी-संहिता, (३.) कठ-संहिता, (४.) कपिष्ठल-संहिता, शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद में अन्तर : (१.) शुक्लयजुर्वेद

(१.) यह आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। (२.) इसमें यज्ञ में प्रयोग किए जाने वाले मन्त्र है। (३.) यह विशुद्ध है, अर्थात् केवल मन्त्र है, कोई मिश्रण नहीं है। (४.) इस ग्रन्थ की प्राप्ति आदित्य से हुई है। आदित्य शुक्ल होता है, अतः इसका नाम शुक्ल-यदुर्वेद रखा गया। शुद्धता के कारण भी इसे शुक्ल कहा गया है। (५.) इसमें व्याख्या, विवरण और विनियोगात्मक भाग नहीं है, अर्थात् विशुद्ध है। (२.) कृष्णयजुर्वेद (१.) यह ब्रह्म-सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। (२.) इसमें मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मण भी मिश्रित है, अतः मिश्रण के कारण कृष्ण कहा गया। (३.) आदित्य के प्रकाश के विपरीत होने से भी इसे कृष्ण कहा गया। (४.) यह अव्यवस्थित है। (५.) इसमें व्याख्या, विवरण और विनियोगात्मक भाग है, अर्थात् विशुद्ध नहीं है, अस्वच्छ है, मिश्रित है।

मन्त्र :

(१.) शुक्लयजुर्वेदः-

शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी-शाखा में कुल-४० अध्याय हैं, १९७५ मन्त्र हैं। वाजयनेयी संहिता में कुल अक्षर २,८८,००० (दो लाख, अट्ठासी हजार) हैं। काण्व-शाखा में भी ४० ही

अध्याय हैं, किन्तु मन्त्र २०८६ हैं। अनुवाक-३२८ हैं। (२.) कृष्णयजुर्वेदः तैत्तिरीय-शाखा में कुल ७ काण्ड हैं, ४४ प्रपाठक हैं, ६३१ अनुवाक हैं। मैत्रायणी-शाखा में कुल ४ काण्ड हैं, ५४ प्रपाठक हैं, ३१४४ मन्त्र हैं। काठक (कठ) संहिता में कुल ५ खण्ड हैं, स्थानक ४० हैं, वचन १३ हैं, ५३ उपखण्ड हैं, ८४३ अनुवाक हैं, ३०२८ मन्त्र हैं। कपिष्ठल अपूर्ण रूप में उपलब्ध है। इसमें ६ अष्टक ही उपलब्ध है , ४८ अध्याय पर समाप्ति है। ब्राह्मण : शुक्लयजुर्वेद शतपथ ब्राह्मण कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण , मैत्रायणी, कठ और कपिष्ठल इन चारों संहिताओं में जो ब्राह्मण भाग हैं, वही कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मण है।

आरण्यक : शुक्लयजुर्वेद बृहदारण्यक कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय आरण्यक उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद ईशोपनिषद् , बृहदारण्यकोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय उपनिषद् , महानारायण, मैत्रायणीय, कठोपनिषद्, श्वेताश्वरोपनिषद्।

श्रौतसूत्र: शुक्लयजुर्वेद-कात्यायन (पारस्कर) कृष्णयजुर्वेद-आपस्तम्ब, बोधायन, हिरण्यकेशी (सत्याषाढ), भारद्वाज, वैखानस, वाधुल, मानव, मैत्रायणी, वाराह। गृह्यसूत्रः शुक्लयजुर्वेद-कात्यायन (पारस्कर) कृष्णयजुर्वेद-आपस्तम्ब, बोधायन, सत्याषाढ, वैखानस, कठ। धर्मसूत्र :-शुक्लयजुर्वेद-कोई नहीं। कृष्णयजुर्वेद-वसिष्ठ-सूत्र। शुल्वसूत्र : शुक्लयजुर्वेद कात्यायन। कृष्णयजुर्वेद बोधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणी, वाराह और वाधुल।

21. वैदिक वाङ्मय ऋग्वेद एक परिचय

वैदिक वाङ्मय का परिचय

ऋग्वेद की शाखा

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद की २१ शाखाएँ हैं, किन्तु पाँच ही शाखाओं के नाम उपलब्ध होते हैं :-(१) शाकल (२) बाष्कल (३) आश्वलायन (४) शांखायन (५) माण्डूकायन संप्रति केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध है।

ऋग्वेद के ब्राह्मण

(१) ऐतरेय ब्राह्मण (२) शांखायन ब्राह्मण ऋग्वेद के आरण्यक (१) ऐतरेय आरण्यक (२) शांखायन आरण्यक ऋग्वेद के उपनिषद (१) ऐतरेय उपनिषद् (२) कौषीतकि उपनिषद् ऋग्वेद के देवता तिस्र एव देवताः इति नैरुक्ताः! (१) अग्नि (पृथिवी स्थानीय) (२) इन्द्र या वायु (अन्तरिक्ष स्थानीय) (३) सूर्य (द्यु स्थानीय) ऋग्वेद में बहु प्रयोग छंद (१) गायत्री, (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप्, (४) त्रिष्टुप (५) बृहती, (६) जगती, (७) पंक्ति , ऋग्वेद के मंत्रों के तीन विभाग

(१) प्रत्यक्षकृत मन्त्र (२) परोक्षकृत मन्त्र (३) आध्यात्मिक मन्त्र ऋग्वेद का विभाजन (१) अष्टक क्रम

८ अष्टक ६४ अध्याय २००६ वर्ग (२) मण्डलक्रम :-१० मण्डल ८५ अनुवाक १०२८ सूक्त १०५८०

परिचय

चारों वेदों में सर्वोच्च स्थान ऋग्वेद को ही प्राप्त है। ऋग्वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद को परम पूज्यनीय माना जाता है और वसन्त पूजा आदि के अवसर पर सर्वप्रथम वेदपाठ ऋग्वेद से ही प्रारम्भ किया जाता है। पुरुषसूक्त में आदि पुरुष से उत्पन्न वेदमन्त्रों में सर्वप्रथम 'ऋक' को गिनाया गया है।

ऋग्वेद की संहिता को 'ऋकसंहिता' कहते हैं। वस्तुत: 'ऋक' का अर्थ है- 'स्तुतिपरक मन्त्र और 'संहिता' का अभिप्राय संकलन से है। अत: ऋचाओं के संकलन का नाम 'ऋकसंहिता' है। ऋक की परिभाषा दी जाती है- ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक ; अर्थात जिससे देवताओं की स्तुति हो उसे 'ऋक' कहते हैं। एक दूसरी व्याख्या के अनुसार छन्दों में बंधी रचना को 'ऋक' नाम दिया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋक को ब्रह्म, वाक, प्राण, अमृत आदि कहा गया है जिसका तात्पर्य यही है कि ऋग्वेद के मन्त्र ब्रह्म की प्रापित कराने वाले, वाक की प्रापित कराने वाले, प्राण या तेज की प्रापित कराने वाले और अमरत्व के साधन हैं। सामान्य रूप से इससे ऋग्वेद के मन्त्रों की महिमा का ग्रहण किया जाना चाहिए। पतंजलि के महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की कदाचित 21 शाखाएं थीं। इनमें से 'चरणव्यूह' नामक ग्रन्थ में उल्लखित ये पांच शाखाएं प्रमुख मानी जाती हैं- शाकल, वाष्कल, आश्वलायनी, शांखायनी और माण्डूकायनी। सम्प्रति ऋग्वेद की एक शाकल शाखा की संहिता ही प्राप्त होती है। यह संहिता कई दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

ऋग्वेद की संहिता का महत्त्व

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ होने के कारण इस (शाकल) संहिता को विश्वसाहित्य का प्रथम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। चारों वेदों की संहिताओं की तुलना में यह सबसे बड़ी संहिता है। एक विशालकाय वैदिक ग्रन्थ के रूप में यह अद्भुत और विविध अनंत ज्ञान का स्रोत है। भाव, भाषा और छन्द की दृषिट से भी यह अत्यन्त प्राचीन है। इसमें अधिकांश देव इन्द्र, विष्णु, मरुत आदि प्राकृतिक तत्त्वों के प्रतिनिधि हैं। ये पंचतत्त्वों- अगिन, वायु, आदि तथा मेघ, विद्युत, सूर्य आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। सभी वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋग्वेद या इसकी संहिता का ही नाम सर्वप्रथम गिनाया जाता है। फिर अनेक विषयों की व्यापक चर्चा करने के कारण इस संहिता का वर्ण्यविषयपरक महत्त्व भी स्वीकार किया जाता है।

ऋग्वेद संहिता का विभाजन

ऋग्वेद की संहिता ऋचाओं का संग्रह है। ऋकसंहिता का विभाजन दो प्रकार से किया जाता है- (1) अष्टक-क्रम और (2) मण्डल-क्रम।

अष्टक क्रम के अन्तर्गत सम्पूर्ण संहिता आठ अष्टकों में विभाजित है और प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। अध्याय वर्गों में विभाजित हैं और वर्ग के अन्तर्गत ऋचाएं हैं। कुल अध्यायों की संख्या 64 और वर्गों की संख्या 2006 है।

मण्डल-क्रम में सम्पूर्ण संहिता में दस मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डल में कई अनुवाक, प्रत्येक अनुवाक में कई सूक्त और प्रत्येक सूक्त में कई मन्त्र हैं। तदनुसार ऋग्वेद-संहिता में 10 मण्डल, 85 अनुवाक, 1028 सूक्त और 10552 मन्त्र हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद की मन्त्र-संहिता के विभाजन की एक सुन्दर और निश्चित व्यवस्था प्राप्त होती है।

ऋग्वेद-संहिता के ऋषि

ऋग्वेद-संहिता के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों पर यदि ध्यान दिया जाए, तो हम पाते हैं कि दूसरे से सातवें मण्डल के अन्तर्गत समाविष्ट मन्त्र किसी एक ऋषि के द्वारा ही साक्षात्कार किये गये हैं। इसीलिए ये मण्डल वंशमंडल कहलाते हैं। इन मण्डलों को दूसरे मण्डलों की तुलना में प्राचीन माना जाता है। यद्यपि कई विद्वान इस मत से असहमत भी हैं। आठवें मण्डल में कण्व, भृगु आदि कुछ परिवारों के मन्त्र संकलित हैं। पहले और दसवें मण्डल में सूक्त-संख्या समान हैं। दोनों में 191 सूक्त ही हैं। इन दोनों मण्डलों की उल्लेखयोग्य विशेषता यह भी है कि इसमें अनेक ऋषियों के द्वारा साक्षात्कार किये गये मन्त्रों का संकलन किया गया है। पहले और दसवें मण्डल में विभिन्न विषयों के सूक्त हैं। प्राय: विद्वान इन दोनों मण्डलों को अपेक्षाकृत अर्वाचीन मानते हैं। नवां मण्डल भी कुछ विशेष महत्त्व लिये हुए है। इसमें सोम देवता के समस्त मन्त्रों को संकलित किया गया है। इसीलिए इसका दूसरा प्रचलित नाम है- पवमान मण्डल।

सुविधा के लिए ऋग्वेद की संहिता के मण्डल, सूक्तसंख्या और ऋषिनामों का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया जा रहा है-

मण्डल	सूक्त संख्या	महर्षियों के नाम
1.	191	मधुच्छन्दा: , मेधातिथि, दीर्घतमा:, अगस्त्य, गोतम, पराशर आदि।
2.	43	गृत्समद एवं उनके वंशज
3.	62	विश्वामित्र एवं उनके वंशज
4.	58	वामदेव एवं उनके वंशज
5.	87	अत्रि एवं उनके वंशज
6.	75	भरद्वाज एवं उनके वंशज
7.	104	वशिष्ठ एवं उनके वंशज
8.	103	कण्व, भृगु, अंगिरा एवं उनके वंशज
9.	114	ऋषिगण, विषय-पवमान सोम
10.	191	त्रित, विमद, इन्द्र, श्रद्धा, कामायनी इन्द्राणी, शची आदि।

इन मन्त्रों के द्रष्टा-ऋषियों में गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, भृगु और अंगिरा प्रमुख हैं। कई वैदिक नारियां भी मन्त्रों की द्रष्टा रही हैं। प्रमुख ऋषिकाओं के रूप में वाक आम्भृणी, सूर्या, सावित्री, सार्पराज्ञी, यमी, वैवस्वती, उर्वशी, लोपामुद्रा, घोषा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

ऋग्वेद संहिता के छन्द

ऋग्वेद संहिता में कुल 20 छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें भी प्रमुख छन्द सात हैं। ये हैं-

1. गायत्री - 24 अक्षर
2. उषिणक - 28 अक्षर
3. अनुष्टुप - 32 अक्षर
4. बृहती - 36 अक्षर
5. पंकित - 40 अक्षर
6. त्रिष्टुप - 44 अक्षर
7. जगती - 48 अक्षर

इनमें भी इन चार छन्दों के मन्त्रों की संख्या इस संहिता में सबसे अधिक पाई जाती है- त्रिष्टुप, गायत्री, जगती और अनुष्टुप।

ऋग्वेद संहिता का वर्ण्य-विषय

ऋग्वेद में तत्कालीन समाज की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था तथा संस्थाओं का विवरण है। इसमें उनके दार्शनिक, आध्यात्मिक कलात्मक तथा वैज्ञानिक विचारों का समावेश भी है। वेदकालीन ऋषियों के जीवन में देवताओं और देव-आराधना को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद का प्रत्येक मन्त्र किसी न किसी देवता से सम्बद्ध है। यथार्थ में देवता से तात्पर्य वर्ण्य विषय का है। तभी छुरा और ऊखल जैसी वस्तुएं भी देवता है। अक्ष और कृषि भी देवता हैं।

ऋग्वेद की संहिता में देवस्तुति की प्रधानता है। अगिन, इन्द्र, मरुत, उषा, सोम, अशिवनौ आदि नाना देवताओं की कई-कई सूक्तों में स्तुतियां की गई हैं। सबसे अधिक सूक्त इन्द्र देवता की स्तुति में कहे गये हैं और उसके बाद संख्या की दृष्टि से अग्नि के सूक्तों का स्थान है। अत: इन्द्र और अगिन वैदिक आर्यों के प्रधान देवता प्रतीत होते हैं। कुछ सूक्तों में मित्रवरुणा, इन्द्रवायू, धावापृथिवी जैसे युगल देवताओं की स्तुतियां हैं। अनेक देवगण जैसे आदित्य, मरुत, रुद्र, विश्वेदेवा आदि भी मन्त्रों में स्तवनीय हैं। देवियों में उषा और अदिति का स्थान अग्रगण्य है।

ऋकसंहिता में देवस्तुतियों के अतिरिक्त कुछ दूसरे विषयों पर भी सूक्त हैं, जैसे जुआरी की दुर्दशा का चित्रण करने वाला 'अक्षसूक्त', वाणी और ज्ञान के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाला 'ज्ञानसूक्त', यम और यमी के संवाद को प्रस्तुत करने वाला 'यमयमी-संवादसूक्त', पुरूरवा और उर्वशी की बातचीत पर प्रकाश डालने वाला 'पुरूरवाउर्वशी-संवादसूक्त' आदि।

विषय की गम्भीरता को दर्शाने वाले सूक्तों में दार्शनिक सूक्तों को गिना जा सकता है, जैसे पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त, नासदीयसूक्त आदि। इनमें सृष्टि-उत्पत्ति और उसके मूलकारण

को लेकर गूढ़ दार्शनिक विवेचन किया गया है। औषधिसूक्त में नाना प्रकार की औषधियों के रूप, रंग और प्रभाव का विवरण है।

ऋग्वेद संहिता के कुछ प्रमुख सूक्त

मुख्य लेख: सूक्त

ऋग्वेद-संहिता के सूक्तों को वर्ण्य-विषय और शैली के आधार पर प्राय: इस प्रकार विभाजित किया जाता है-

(1) देवस्तुतिपरकसूक्त

(2) दार्शनिक सूक्त

(3) लौकिक सूक्त

(4) संवाद सूक्त

(5) आख्यान सूक्त, आदि।

कुछ प्रमुख सूक्त, जो अत्यधिक लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इस संहिता के व्यापक विषय पर प्रकाश डालता है।

(१) पुरुष सूक्त - ऋग्वेदसंहिता के दशम मण्डल का 90 संख्यक सूक्त 'पुरुषसूक्त कहलाता है क्योंकि इसका देवता पुरुष है। इसमें पुरुष के विराट रूप का वर्णन है और उससे होने वाली सृषिट की विस्तार से चर्चा की गयी है। इस पुरुष को हजारों सिर, हजारों पैरों आदि से युक्त बताया गया है। इसी से विश्व के विविध अंग और चारों वेदों की उत्पत्ति कही गयी है। सर्वप्रथम चार वर्णों के नामों का उल्लेख ऋग्वेद के इसी सूक्त में मिलता है। यह सूक्त उदात्तभावना, दार्शनिक विचार और रूपकात्मक शैली के लिए अति प्रसिद्ध है।

(२) नासदीय सूक्त - ऋग्वेदसंहिता के दशम मण्डल के 129वें सूक्त को 'नासदीय सूक्त या 'भाववृत्तम सूक्त' कहते हैं। इसमें सृषिट की उत्पत्ति की पूर्व अवस्था का चित्रण है और यह खोजने का यत्न किया गया है कि जब कुछ नहीं था तब क्या था। तब न सत था, न असत, न रात्रि थी, न दिन था; बस तमस से घिरा हुआ तमस था। फिर सर्वप्रथम उस एक तत्त्व में 'काम उत्पन्न हुआ और उसका यही संकल्प सृषिट के नाना रूपों में अभिव्यक्त हो गया। पर अन्त में सन्देह किया गया है कि वह परम व्योम में बैठने वाला एक अध्यक्ष भी इस सबको जानता है या नहीं। अथवा यदि जानता है तो वही जानता है और दूसरा कौन जानेगा?

(३) हिरण्यगर्भ सूक्त - इस संहिता के दशम मण्डल के 121वें सूक्त को 'हिरण्यगर्भ सूक्त' कहते हैं क्योंकि इसका देवता हिरण्यगर्भ है। नौ मन्त्रों के इस सूक्त में प्रत्येक मन्त्र में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' कहकर यह बात दोहराई गयी है कि ऐसे महनीय हिरण्यगर्भ को छोड़कर हम किस अन्य देव की आराधना करें? हमारे लिए तो यह 'क' संज्ञक प्रजापति ही सर्वाधिक पूजनीय है। इस हिरण्यगर्भ का स्वरूप, महिमा और उससे होने वाली उत्पत्ति का विवरण इस सूक्त में बड़े सरल और स्पष्ट शब्दों में किया गया है। हिरण्यगर्भ ही सृष्टि का नियामक और धर्ता है।

(४) संज्ञान सूक्त - ऋग्वेदसंहिता के दशम मण्डल के 191वें संख्यक सूक्त को संज्ञान सूक्त कहते हैं। इसमें कुल 8 मन्त्र हैं, पर ऋग्वेद का यह अनितम मन्त्र अपने उदात्त विचारों और सांमनस्य के सन्देश के कारण मानवीय समानता का आदर्श माना जाता है। हम मिलकर चले, मिलकर बोलें, हमारे हृदयों में समानता और एकता हो-यह कामना किसी भी समाज या संगठन के लिए एकता का सूत्र है।

(५) अक्ष सूक्त - ऋग्वेद के दशम मण्डल के 34वें सूक्त को 'अक्ष सूक्त' कहते हैं। यह एक लौकिक सूक्त है। इसमें कुल 14 मन्त्र हैं। अक्ष क्रीड़ा की निन्दा करना और परिश्रम का उपदेश देना- इस सूक्त का सार है। एक निराश जुआरी की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण इसमें दिया गया है जो घर और पत्नी की दुर्दशा को समझकर भी जुए के वशीभूत होकर अपने को उसके आकर्षण से रोक नहीं पाता है और फिर सबका अपमान सहता है और अपना सर्वनाश कर लेता है। अन्त में, सविता देवता से उसे नित्य परिश्रम करने और कृषि द्वारा जीविकोपार्जन करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

(६) विवाह सूक्त - ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के 85वें सूक्त को विवाहसूक्त नाम से जाना जाता है। अथर्ववेद में भी विवाह के दो सूक्त हैं। इस सूक्त में सूर्य की पुत्री 'सूर्या तथा सोम के विवाह का वर्णन है। अशिवनी कुमार इस विवाह में सहयोगी का कार्य करते हैं। यहां स्त्री के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन है। उसे सास-ससुर की सेवा करने का उपदेश दिया गया है। परिवार का हित करना उसका कर्तव्य है। साथ ही स्त्री को गृहस्वामिनी, गृहपत्नी और 'साम्राज्ञी' कहा गया है। अतः स्त्री को परिवार में आदरणीय बताया गया है।

(७) कुछ मुख्य आख्यानसूक्त - ऋग्वेदसंहिता में कैई सूक्तों में कथा जैसी शैली मिलती है और उपदेश या रोचकता उसका उद्देश्य प्रतीत होता है। कुछ प्रमुख सूक्त जिनमें आख्यान की प्रतीति होती है इस प्रकार हैं- श्वावाश्व सूक्त (5-61), मण्डूक सूक्त (7-103), इन्द्रवृत्र सूक्त (1-80, 2-12), विष्णु का त्रिविक्रम (1-154); सोम सूर्या विवाह (10-85)। वैदिक आख्यानों के गूढार्थ की व्याख्या विद्वानों द्वारा अनेक प्रकार से की जाती है।

(८) कुछ मुख्य संवादसूक्त - वे सूक्त, जिनमें दो या दो से अधिक देवताओं, ऋषियों या किन्हीं और के मध्य वार्तालाप की शैली में विषय को प्रस्तुत किया गया है, प्राय: संवादसूक्त कहलाते हैं। कुछ प्रमुख संवाद सूक्त इस प्रकार हैं-

पुरूरवा-उर्वशी-संवाद ऋ. 10/95

यम-यमी-संवाद ऋ. 10/10

सरमा-पणि-संवाद ऋ. 10/108

विश्वामित्र-नदी-संवाद ऋ. 3/33

वशिष्ठ-सुदास-संवाद ऋ. 7/83

अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद ऋ. 1/179

इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद कं. 10/86

संवाद सूक्तों की व्याख्या और तात्पर्य वैदिक विद्वानों का एक विचारणीय विषय रहा है; क्योंकि वार्तालाप करने वालों को मात्र व्यक्ति मानना सम्भव नहीं है। इन आख्यानों और संवादों में निहित तत्त्वों से उत्तरकाल में साहित्य की कथा और नाटक विधाओं की उत्पत्ति हुई है। इसके अतिरिक्त, आप्रीसूक्त, दानस्तुतिसूक्त, आदि कुछ दूसरे सूक्त भी अपनी शैली और विषय के कारण पृथक रूप से उलिलखित किये जाते हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद की संहिता वैदिक देवताओं की स्तुतियों के अतिरिक्त दर्शन, लौकिक ज्ञान, पर्यावरण, विज्ञान, कथनोपकथन आदि अवान्तर विषयों पर भी प्रकाश डालने वाला प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थ है। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त सारगर्भित सामग्री को प्रस्तुत करने के साथ-साथ यह साहितियक और काव्य-शास्त्रीय दषिट से भी विशिष्ट तथ्यों को उपस्थापित करने वाला महनीय ग्रन्थरत्न है।

22. सामवेद ऋग्वेद

मन्त्र में आये 'ऋचः' और 'सामानि' पदों का सामान्य अर्थ ऋग्वेद के मन्त्र और सामवेद के मन्त्र होता है। इन पदों से सूचित होने वाले 'ऋग्वेद' और 'सामवेद' यहाँ शेष दोनों वेदों यजुर्वेद और अथर्ववेद के भी उपलक्षण हैं। अर्थात् ऋग्वेद और सामवेद के निर्देश से चारों वेदों का ही निर्देश समझ लेना चाहिए। वस्तुतः चारों वेदों के मन्त्रों की रचना तीन प्रकार की है। जो मन्त्र छन्दोवद्ध हैं और छन्दों में होने वाली पादव्यवस्था से युक्त हैं उन्हें 'ऋच्' या 'ऋचा' कहा जाता है- यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक्। (जैमिनीयसूत्र 2.1.35) ऋग्वेद में ऐसे मन्त्रों का बाहुल्य है इसलिए उसे ऋग्वेद कहा जाता है। जब ऋचाओं को ही गीति के रूप में गाया जाता है तो उन्हें 'साम' कहा जाता है- गीतिषु सामाख्या (जैमिनीयसूत्र 2.1.36)। सामवेद में जितने मन्त्र हैं वे भक्तिरस में भरकर गीतिरूप में गाये जाते हैं, इसलिए उसका नाम सामवेद है। जो मन्त्र छन्दोबद्ध नहीं हैं और गीतिरूप में गाये नहीं जा सकते अर्थात् जो मन्त्र पद्य नहीं हैं गद्य हैं, उन्हें 'यजुः' कहते हैं- शेषे यजुः शब्दः (जैमिनीयसूत्र 2.1.37)। यजुर्वेद में ऐसे 'यजुः' मन्त्र अधिक हैं इसलिए उसका नाम यजुर्वेद है। अथर्ववेद में तीनों प्रकार के मन्त्र हैं। क्योंकि चारों वेदों के मन्त्रों की रचना ही तीन प्रकार की है, इसलिए चारों वेदों को त्रयी या तीन वेद कह दिया जाता है। यों वेद चार ही हैं। केवल तीन प्रकार की रचना के कारण उन्हें तीन वेद भी कह दिया जाता है। इन तीन प्रकार की रचनाओं में भी प्राधान्य ऋग् मन्त्रों और साम मन्त्रों का ही है, चारों वेदों की अधिकांश रचना इन्हीं में है। इसलिए इस मन्त्र के 'ऋचः' और "सामानि' ये पद यों भी चारों वेदों का निर्देश करने वाले हो जाते हैं।

23. ऋग्वेद खिल सूक्त

खिला सूक्त, जिसे ऋग्वेद शाकल शाखा में जोड़ा किया गया है। वे ऋग्वेद के पाठ में जोड़े गए हैं, लेकिन फिर भी वैदिक काल के "मंत्र" काल से संबंधित हैं।

ऋग्वेद संहिता में शाकल शाखा १०२४ मंत्रों के अनुसार है।

जी. बुहलर प्राचीन कश्मीरी पांडु लिपि में लिखी गई ऋग्वेद की पुरानी पांडुलिपियों से खिलाड़ी सूक्तों का पता लगाने वाले पहले व्यक्ति थे। इन सूक्तों का संकलन 10वें मंडल के बाद हुआ है। मैक्समूलर के अनुसार, खिला सूक्तों की संख्या 32 है, जबकि औफ्रेच्ट ने उन्हें 25 के रूप में रखा है। पं। सातवलेकर ने ऋग्वेद संहिता के अपने संस्करण में 32 खिला-सूक्तों को शामिल किया है। श्री. चिंतामणि गणेश काशीकर ने एक संस्करण प्रकाशित किया जहां उन्होंने विभिन्न संस्करणों के साथ पांच अध्यायों में 86 सूक्तों को रखा। सातवलेकर की ऋक्संहिता में 36 खिल सूक्त हैं।

खिला का अर्थ (खिल)

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार, खिला शब्द का प्रयोग परिशिष्ट (एक पूरक) या एक प्रक्षिप्त (एक सम्मिलित या प्रक्षेप) को दर्शाने के लिए किया जाता है। वे पहलू या मंत्र जो मूल पाठ में मौजूद नहीं हैं और आवश्यकता के आधार पर अन्य स्रोतों से एकत्र किए जाते हैं, उन्हें खिला (खिल) कहा जाता है। ऐसे मंत्र वेद के अन्य शकों से मांगे जाते हैं जिन्हें खिल कहा जाता है। यह परिभाषा किसी भी पाठ्य प्रविष्टि पर लागू होती है। शाकल की ऋग्वेद संहिता में, बाष्कल संहिता के कुछ मंत्रों को खिला सूक्तों के खंड के तहत समूहीकृत किया गया है।

खिल सूक्तों प्रत्येक मण्डल के अनुसार भी बांटा गया है।

मक्समूलर के संस्करण में 32 तथा ऑफ्रेख्त के संस्करण में 25 खिल सूक्त हैं। सातवलेकर की ऋक्संहिता में 36 खिल सूक्त हैं।

प्रो. रॉठ की प्रेरणा से डॉ. शेफ्टेलोवित्स ने एक खिल-सूक्त-संग्रह 1906 में ब्रेस्लाड (जर्मनी) से प्रकाशित करवाया। तदनन्तर पूना से सायण ऋग्वेद-भाष्य के प्रकाशित किया गया। चिन्तामणि गणेश काशीकर ने खिल सूक्तों पर विस्तृत विवेचन किया है। 5 अध्यायों में 86 खिल सूक्तों का पाठभेद आदि के साथ इसका विवरण यहाँ प्रस्तुत है:-अध्याय-१२ में मन्त्र संख्या ८६ - विशिष्ट सूक्त- सौपर्ण सूक्त (11 सूक्त. 84 मन्त्र)। (2.) -------16----------66+70 (अन्य)------श्रीसूक्त (19+21=40 मन्त्र), (3.) -------22---------137+25 (अन्य)------बालखिल्य (8 सूक्त, 66 मन्त्र), (4.) -------14----------105+60 (अन्य)------शिवसंकल्प (28 मन्त्र), (5.) --------22----------370+9 (अन्त्य)-------निविद् 193, प्रैष 64, कुन्ताप 80 मन्त्र), इस प्रकार कुल सूक्त 86 और कुल मन्त्र 929 हैं।

प्रसिद्ध खिला सूक्त

सौपर्ण सूक्त (सौपर्ण-सूक्तम्) : अध्याय 1 में सूक्त 2 से 12 अर्थात 11 सूक्त सौपर्ण सूक्त का निर्माण करते हैं। ऋषि तारक्ष्य सुपर्णा मंत्र दृष्टि है इसलिए इन सूक्तों को सौपर्ण सूक्त कहा जाता है। इसे सुपर्णा-अध्याय भी कहा जाता है। ग्यारह सूक्तों में से दस सूक्तों में अश्विनी देवताओं की स्तुति है।

श्री सूक्त (श्री-सूक्तम्) : एक बहुत प्रसिद्ध सूक्त इसका कई श्रौतसूत्रों और अग्नि पुराण में उल्लेख किया गया है। लक्ष्मी पूजा और दुर्गा पूजा के दौरान इस सूक्त का पाठ किया जाता है।

वलाखिल्य सूक्त (वालखिल्य-सूक्तम्) : अध्याय 3 में सूक्त 1 से 8 तक वलाखिल्य सूक्त बनते हैं। वे ऋग्वेद के मंडल 8 (सूक्त 49-59) में 11 सूक्तों, 80 मंत्रों के अनुरूप हैं। इन 11 सूक्तों में से प्रथम आठ सूक्त खिलाड़ी सूक्त कहे जाते हैं। इन 8 सूक्तों के मन्त्र द्रष्टा कण्व कुल के हैं। वे हैं प्रस्कनवा, पुषितगु, सृष्टिगु, आयु, मेध्या, मातरिश्व, कृष और प्रशध्र। इनमें से अधिकांश मंत्रों के देवता इंद्र हैं। बृहद्देवता (6.84-86) में इन वलखिल्य सूक्तों के मंत्र द्रष्टाओं को बहुत उज्ज्वल ऋषि कहा गया है।

पावमणि सूक्त (पावमानी-सूक्तम्) : यह सूक्त पावमन सोम से संबंधित है। इस स्तुति की पूजा और जप करने से सभी प्रकार के रोग, दुख, पीड़ा आदि दूर हो जाते हैं।

ब्रह्म सूक्त (ब्रह्म-सूक्तम्) : इस सूक्त के दस मंत्रों में ब्रह्म और सूर्य के बारे में बताया गया है।

रात्री सूक्त (रात्रि-सूक्तम्) : इस सूक्त के चार मन्त्र रात्रि के समय (रात्रि) का वर्णन करते हैं।

कृत्य सूक्त (कृत्या-सूक्तम्) : इस सूक्त के चालीस मंत्र विभिन्न प्रकार के मंत्रों का वर्णन करते हैं।

शिवसंकल्प सूक्त (शिवसंकल्प-सूक्तम्) : मन की शुद्धता प्राप्त करने के लिए अट्ठाईस मंत्रों का पाठ किया जाता है। इनमें से कुछ मंत्र यजुर्वेद अध्याय 24 में मौजूद हैं।

संजना सूक्त (संज्ञान-सूक्तम्) : इस सूक्त के पांच मन्त्र एकता और सामूहिकता का वर्णन करने वाली एक स्तुति है।

अन्य नाम

अथर्वाङ्गिरस्, अगङ्गिरसवेद, ब्रह्मवेद, भृग्वाङ्गिरोवेद, क्षत्रवेद, भैषज्य वेद, छन्दो वेद, महीवेद मुख्य ऋषि-अङ्गिरा, ऋत्विक-ब्रह्मा प्रजापति ब्रह्म ने इस वेद का ज्ञान सर्वप्रथम अङ्गिरा ऋषि को दिया। शाखाएँ ऋषि पतञ्जलि ने महाभाष्य में इस वेद की ९ शाखाएँ बताई हैं, जिनके नाम इस प्रकार है-(१.) पैप्लाद, (२.) तौद,(स्तौद) (३.) मौद, (४.) शौनकीय, (५.) जाजल, (६.) जलद, (७.) ब्रह्मवद, (८.) देवदर्श, (९.) चारणवैद्य। इनमें से सम्प्रति केवल २ शाखाएँ ही उपलब्ध है:-शौनकीय और पैप्लाद। शेष मुस्लिम आक्रान्ताओं न नष्ट कर दी। आजकल सम्पूर्ण भारत वर्ष में शौनकीय-शाखा ही प्रचलित है और यही अथर्ववेद है। (१.) शौनकीय-शाखा, सूक्त-७३०, मन्त्र-५९८७, (२.) पैप्लाद-शाखा-यह अपूर्ण है। इसका प्रचलन पतञ्जलि के समय था। उपवेद-अर्थवेद, गोपथ ब्राह्मण (१.१.१०) में इसके पाँच उपवेदों का वर्णन हुआ है सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद, पुराणवेद। शतपथ-ब्राह्मण (१३.४.३.९) में भी इन उपवेदों का नाम आया है-सर्पविद्यावेद, देवजनविद्यावेद, (रक्षोवेद या राक्षसवेद), मायावेद (असुरवेद या जादुविद्यावेद), इतिहासवेद, पुराणवेद ऋषि व्यास ने इसका ज्ञान सुमन्तु को दिया ब्राह्मण-गोपथ-ब्राह्मण

आरण्यक-कोई नहीं उपनिषद्-मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद श्रौतसूत्र-वैतान-गृह्यसूत्र-कौशिक, धर्मसूत्र-कोई नहीं। शुल्वसूत्र-कोई नहीं। अथर्वा ऋषि महान् वैज्ञानिक थे। उन्होंने इस धरा-धाम पर सर्वप्रथम अग्नि का आविष्कार किया था। उन्होंने अरणि-मन्थन से अग्नि का और जल-मन्थन से जलीय-विद्युत् का आविष्कार किया था-(१.) "अग्निर्जातो अथर्वणा" (ऋग्वेदः-१०.२१.५) (२.) "अथर्वा त्व प्रथमो निरमन्थदग्ने।" (यजुर्वेद-११.३२) (३.) अथर्वा ऋषि ने ही उत्खनन के द्वारा पुरीष्य अग्नि (प्राकृतिक गैस अर्थात् Oil and Natural Gas) का आविष्कार किया था "पुरीष्योऽसकि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।" (यजुर्वेद-११.३२) ... (4.) आज हम जिस अग्नि के द्वारा यज्ञ करते है, उस अग्नि में सर्वप्रथम अथर्वा ने यज्ञ किया था-"यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते।" (ऋग्वेदः-१.८३.५) अथर्वा ऋषि अध्यात्मवाद के प्रथम प्रचारक थे। अथर्वा ऋषि का दृष्टिकोण व्यापक था। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य किया था। अथर्ववेद के सूक्त (१.) पृथिवी-सूक्त , अन्य नाम-भूमि-सूक्त (१२.१) कुल ६३ मन्त्र। (२.) ब्रह्मचर्य-सूक्त-(११.५) कुल २६ मन्त्र। (३.) काल-सूक्त-दो सूक्त हैं-११.५३ और ११.५४, कुल मन्त्र १५ (४.) विवाह-सक्त-परा १४ वा काण्ड, इसमें २ सक्त और १३९ मन्त्र हैं। (५.) व्रात्य-सूक्त-१५ काण्ड के १ से १८ तक के सूक्तों में २३० मन्त्र है, ये सभी व्रात्य सूक्त हैं। (६.) मधुविद्या-सूक्त-९ वें काण्ड के सूक्त १ के २४ मन्त्रों में यह सूक्त है। (७.) ब्रह्मविद्या-सूक्त-अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में ब्रह्मविद्या का विस्तृत वर्णन है। वैदिक सभ्यता और संस्कृति के विस्तृत ज्ञान के लिए अथर्ववेद चारों वेदों में सबसे अधिक उपयोगी है। अथर्ववेद सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का सबसे सुन्दर चित्रण करता है। अथर्ववेद एक प्रकार का विश्वकोश है। यह सार्वजनीन वेद है। इसमें सभी वर्गों और सभी आश्रमों का विस्तृत वर्णन है। यही एक वेद है जो एक साथ लौकिक और पारलौकिक दोनों क्षेत्रों का वर्णन करता है।

आर्य समाज का दायित्व बनता है कि हिन्दू अपने प्रत्येक धर्मग्रंथ को अच्छे से जाने और समझें। जैसा कि आर्य समाज सदा से इसी प्रयास में रहा है कि हिन्दू इपने मूल वैदिक धर्म को ठीक से जानकर इससे जुड़ जाए और इसलिये समय समय पर आर्य समाज ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा हिन्दू जनता में चेतना फैलाई है। तो इन ६ शास्त्रों को वेदों के उपांग या दर्शन शास्त्र भी कहा जाता है। हमारे ऋषियों ने वेदों में यत्र तत्र बिखरे सिद्धान्तों को समेटकर इन ६ दर्शनशास्त्रों का निर्माण किया है जिनके आधार पर हम वेदवाणी को ठीक ठीक समझ सकते हैं। ये ६ वैदिक दर्शन आस्तिक दर्शन कहलाते हैं। ये हमारे तर्कशास्त्र हैं जिन्हें पढ़कर हर मनुष्य की बुद्धि खुल जाती है और वह कभी भ्रमित होकर ईश्वर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि के विषय पर शंका नहीं करता। इन दर्शन शास्त्रों को पढ़कर सभी प्रकार की शंकाओं का समाधान स्वयं ही हो जाता है। ये ६ दर्शन इस प्रकार हैं : (१) न्याय शास्त्र :-इसकी रचना गौतम मुनि ने की है। इस शास्त्र का विषय मुख्यतः तर्क है। चार प्रकार के प्रमाणों के द्वारा मनुष्य अपने आसपास बिछे हुए संसार में से सत्य और असत्य को छाँटकर अलग करके जान पाए इस उद्देश्य से ये दर्शन रचा गया है। (२) वैशेषिक शास्त्र :-इसकी रचना कणाद मुनि ने की है। ये शास्त्र पदार्थ विद्या के बारे में है। ईश्वर ने हमारे लिये संसार के जिन पदार्थों का निर्माण किया है उनके गुण कर्म आदि जानकर उनसे कैसे उपयोग लेना है? ये इस शास्त्र का विषय है। (ये भौतिक शास्त्र है)

(३) सांख्य शास्त्र :-इसकी रचना कपिल मुनि ने की है। इसका मुख्य विषय है प्रकृति के सबसे सूक्ष्म कणों से सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होती है? कैसे सभी पदार्थों में समानता होते हुए विशेषता है? ये शास्त्र पूर्ण रूप से प्रकृति और आत्मा में भेद बतलाता है। (४) योग शास्त्र :-इसकी रचना पतंजलि मुनि ने की है। इसका मुख्य विषय है आठ मर्यादाओं (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधी) का पालन करते हुए सभी दुखों से छूटते हुए मोक्ष प्राप्त करने की विधि बताना। (५) मिमांसा :-इसकी रचना जैमिनि मुनि ने की है। इसका विषय है कि किस प्रकार के वैदिक कर्मकांड और मर्यादाओं का पालन करने से मनुष्य पूर्ण सुखी हो सकता है और अपने जीवन के लक्ष्य मोक्ष को पा सकता है? (६) वेदान्त (ब्रह्मसूत्र) :-इसकी रचना बादरायण वेदव्यास मुनि ने की है। इसका मुख्य विषय है ईश्वर के स्वरूप उसके गुणों का वर्णन करना जिनके जानकर मनुष्य उनके विषय में सभी शंकाओं से निवृत होकर उनकी उपासना में लगे और योगाभ्यास करते हुए उनको प्राप्त करे, ये हमारे ६ वैदिक आस्तिक दर्शन हैं जिनको पढ़कर मनुष्य वेद के मन्तव्य

ठीक से समझकर तार्किक होकर अपने मूल धर्म को ठीक से जान सकता है।

24. शिक्षा

वेदांगों में शिक्षा वेदांग का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अंगों में शिक्षा को घ्राण (नासिका) कहा गया है :-"शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य।" आचार्य सायण ने शिक्षा की परिभाषा की है-"स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा।" अर्थ-जिस वेदांग में स्वर और वर्ण आदि के उच्चारण की रीति का उपदेश दिया जाता है, वह शिक्षा है।

शिक्षा वेदांग में मुख्यतः उच्चारण प्रकार ही है। तैत्तिरीयोपनिषद् (1.1) में इसे और भी स्पष्ट किया गया है-"शिक्षां व्याख्यास्यामः वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, सन्तानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।"

25. शिक्षा ग्रन्थ में इन छः अंगों का विवेचन किया जाता है।

(1.) वर्णः-अ, इ, उ, क्, ख् आदि वर्णों का उच्चारण।

(2.) स्वरः वेदपाठ में प्रयुक्त **उदात्त**, **अनुदात्त** और **स्वरित** का उच्चारण।

(3.) मात्रा-ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का उच्चारण।

(4.) बल-स्थान, प्रयत्न के अनुसार वर्णों का उच्चारण।

(5.) साम-दोषरहित और माधुर्य आदि गुण सहित उच्चारण।

(6.) सन्तान-संहिता (सन्धि) के नियमों के अनुसार उच्चारण।

26. शिक्षा में तीन प्रकार की रचनाएँ।

(1.) प्रातिशाख्य, (2.) शिक्षा-ग्रन्थ (3.) शिक्षा-सूत्र।

(1.) प्रातिशाख्य-ग्रन्थ :

ये सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेद की प्रत्येक संहिता का, शाखा का अपना प्रातिशाख्य-ग्रन्थ हैं। "प्रातिशाखा" से सम्बन्धित होने के कारण ही इन्हें प्रातिशाख्य कहा जाता है। प्रत्येक शाखा में वेदमन्त्रों के उच्चारण के प्रकार भिन्न-भिन्न है।

प्रातिशाख्य-ग्रन्थों के विषय-

(1.) वर्ण समाम्नाय-स्वर और व्यञ्जन आदि वर्णों की गणना करना और उनके उच्चारण के नियमों को स्पष्ट करना।

(2.) सन्धि दो वर्णों के मिलने पर होने वाले परिवर्तनों का विवेचन।

(3.) प्रगृह्य सञ्ज्ञा-पदों के विभाग के नियमों को स्पष्ट करना तथा अपवाद नियमों को बतलाना।

(4.) **उदात्त-अनुदात्त** शब्दों की गणना, **स्वरित** के भेद बतलाना और आख्यात स्वर को स्पष्ट करना।

(5.) संहितापाठ और पदपाठ में भेद दिखलाने वाले नियमों की व्याख्या और सत्व, षत्व और दीर्घ का विवरण।

(6.) विभिन्न प्रातिशाख्य में विभिन्न पाठ।

(7.) साम-प्रातिशाख्य में विभिन्न रीतियों का वर्णन, जैसे प्रश्लेष, विश्लेष, कृष्ट, अकृष्ट संकृष्ट आदि उच्चारण में होने वाले भेदों का वर्णन।

27. सम्प्रति उपलब्ध प्रातिशाख्य-ग्रन्थः-

(क) ऋग्वेद-(1.) ऋक्प्रातिशाख्य,

(ख) शुक्लयजुर्वेदः (2.) वाजसनेयिप्रातिशाख्य,

(ग) कृष्णयजुर्वेदः (3.) तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य,

(घ) सामवेद-(4.) पुष्पसूत्र प्रातिशाख्य, (5.) ऋक्तन्त्र प्रातिशाख्य,

(ङ) अथर्ववेद-(6.) अथर्ववेद-प्रातिशाख्य सूत्र, (7.) अथर्व प्रातिशाख्य, (8.) चतुरध्यायिका।

संहितापाठ और पदपाठ के द्वारा वैदिक संहिताओं के स्वरूप को सुरक्षित रखा गया है।

प्रातिशाख्य की विषय-सामग्री-(1.) मन्त्रों का उच्चारण, (2.) मन्त्रों में स्वर-विधान, (3.) सन्धि, (4.) आवश्यकतानुसार छन्द के कारण ह्रस्व के स्थान में दीर्घ का विधान, (5.) संहितापाठ को पदपाठ में बदलने के नियम।

प्रातिशाख्य व्याकरण के आदि ग्रन्थ माने जाते हैं। यद्यपि प्रातिशाख्य स्वयं व्याकरण-ग्रन्थ नहीं है, तथापि इनमें व्याकरण के मूलभूत सिद्धान्त स्थापित है।

28. शिक्षा-ग्रन्थ

प्रातिशाख्य-ग्रन्थों के आधार पर शिक्षा-ग्रन्थों की रचना हुई है। ये कारिकाओं में उपलब्ध है। इनकी संख्या अनिश्चित है। सम्प्रति 11 शिक्षा-ग्रन्थ उपलब्ध हैं

(1.) पाणिनीय शिक्षा, (2.) याज्ञवल्क्य-शिक्षा, (3.) वाशिष्ठी शिक्षा, (4.) कात्यायनी, (5.) पाराशरी, (6.) माण्डव्यी, (7.) अमोघानन्दिनी, (8.) माध्यन्दिनी, (9.) केशवी, (10.) नारदीया, (11.) माण्डूकी शिक्षा।

शिक्षा-ग्रन्थों के विषय

(1.) शुद्ध-उच्चारण का महत्त्व,

(2.) शुद्ध-उच्चारण के नियम,

(3.) पाठक के गुण,

(4.) पाठक के दोष।

(3.) शिक्षा-सूत्र

इन शिक्षाओं के अतिरिक्त अन्य प्राचीन शिक्षासूत्र भी उपलब्ध होते हैं, जैसे आपिशली, पाणिनि और चन्द्रगोमी। शिक्षासूत्रों में वर्णों की उत्पत्ति के स्थान और वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न आदि पर प्रकाश डाला गया है।

सृष्टि के आदि में ऋषियों, मनीषियों ने भाषा का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया था। भारत में भाषाशास्त्र (आधुनिक भाषाविज्ञान) के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से शिक्षा-वेदाङ्ग का बहुत महत्त्व है।

29. वेदमन्त्र का भाष्य महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानंद से पूर्व के विद्वान, संहिता पाठ को पद पाठ में परिवर्तित करने के लिए पुनरुक्ति में आए हुए पद को नहीं लेते थे यह सोच कर कि यह पद पहले आ चुका है ऐसे ही गायन की परंपरा थी लेकिन महर्षि दयानंद ने अर्थ की दृष्टि से पद जितनी बार भी आया, उन्होंने उसको लिया महर्षि दयानंद सरस्वती अपनी भूमिका में उच्चारण करते हैं कि यदि आप वेद मंत्र उच्चारण करने के बाद उसके भाव में अर्थ सहित अपने अन्तःकरण में समझ लो, तो आपको पद पाठ अन्य और पदार्थ तक जाने की आवश्यकता नहीं। लेकिन यदि कोई विद्वान उस तक नहीं पहुंच पाता तो उसके बाद बाद पद पाठ पढे और वहीं रुक जाए। पद पाठ के बाद भी अर्थ नहीं समझ पाता तो अन्य पढे। फिर पदार्थ पर जाए यह व्यक्तियों की बुद्धि के स्तर पर निर्भर करता है कि वह किस स्तर तक जाना चाहता है यह समझ सकता है वेद मंत्र को वेद मंत्र की लयबद्धता, पदों की निरंतरता अक्षरों की क्षमता व पदों की समझने से ही वेद मंत्र का भाव अधिक उत्तम बनता है। हम वेद मन्त्र में आये हुए पदों को उसी क्रम में पढे जिस क्रम में वह वेदमन्त्र में आए हैं।

यजुर्वेद तैतरीय संहिता प्रातिशाख्य हिन्दी भाष्य सहित जमुना पाठक द्वारा कृत में बहुत से प्रकाशित प्रातिशाख्यों का विवरण मिलता है।

वैदिक वाङमय में प्रयुक्त स्वरांकन प्रकार (2021 वि.), युधिष्टर मीमांसक पत्र पुस्तक अनुपलब्ध।

सामवेद स्वरांकन प्रकार (2021 वि.), युधिष्टर मीमांसक पत्र पुस्तक अनुपलब्ध।

सामगान उद्भव व्यवहार एवम सिद्धान्त पंकज माला शर्मा कात्यान वैदिक प्रकाशन होशियारपुर पत्र पुस्तक।

ऋषि दयानन्द पद प्रयोग शैली युधिष्टर मीमांसक।

वैदिक शब्दों के अर्थों की मीमांसा।

शतपथ-ब्राह्मण (विज्ञान-भाष्य) पं. मोतीलाल शर्मा, राजस्थान वैदिक तत्व-शोध संस्थान, मानवाश्रम, जयपुर से 1956 ई. में प्रकाशित।

https://harshad30.wordpress.com/2015/01/page/9/ शतपथ ब्राह्मण के भाष्य कर्त्ता।